तृतीय अध्याय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान जीवन का संघर्ष और चुनौतियाँ

भूमंडलीकरण, विश्वबाजार, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभाव ने हमारे समाज में गरीबी और अमीरी के बीच के अंतर को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। गरीब और गरीब तथा अमीर और अमीर होता जा रहा है। विकास के मामले में हम अन्य देशों की बराबरी करना चाहते हैं, किन्तु हमारे देश का किसान आज भी गरीबी और बदहाली का जीवन जीने को मजबूर है। उसकी दशा में कोई खास परिवर्तन नहीं दिखाई देता है। एक तरफ हमें यह दिखाया जाता है कि आने वाले समय में हमारा देश अमेरिका और ब्रिटेन की भी अर्थव्यवस्था को पछाड़ देगा तो दूसरी ही तरफ हमारे सामने भूख से दम तोड़ते उड़ीसा के गरीब बच्चे और विदर्भ में अकाल और सूखे से आत्महत्या करते किसान की घटनाएं आती हैं।

भारत के सबसे समृद्ध राज्य पंजाब तक में आये दिन आत्महत्या की घटनाएं हमारे सामने आ रही हैं। इससे साफ़ प्रतीत होता है कि हमारा देश कितना भी विकास कर रहा हो, किन्तु हमारे यहाँ किसानों की दशा वही है जो आजादी के पहले थी। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में किसान अनेक समस्याओं में जकड़ा हुआ दिखाई देता है। कभी उसके सामने महंगी, खाद, बीज की समस्या आती है तो कभी सिंचाई के अभाव में उसके खेत सूख रहे हैं। कभी वह कर्ज से परेशान है तो कभी बैंक और उसके दलालों द्वारा कर्ज न लेते हुए भी उसे कर्जदार घोषित कर दिया जाता है। यदि इन सब समस्याओं से वह किसी तरह से बच जाये तो प्राकृतिक आपदा उसकी कमर तोड़ देती है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में हमें कर्ज, बहुराष्ट्रीय कंपनियां, भूमिअधिग्रहण, सरकारी नीतियाँ, मंडी की समस्या, पलायन, जमींदारी प्रथा,

राजनेताओं के किसानों पर अत्याचार आदि किसानों की समस्याएं देखने को मिलती हैं। इन्हें हम विभिन्न बिन्दुओं के माध्यम से जान सकते हैं।

3.1. भारतीय समाज में किसान की स्थिति

भारत में कृषि व्यवस्था का आरंभ ऋग्वैदिक काल से ही होता है। हमारा देश सदा से प्राकृतिक संसाधनों से भरा-पूरा रहा है। खेती-किसानी लोगों की जीविका का मुख्य साधन रही है। प्राचीन समय में भी किसान कृषि एवं पशुपालन पर ही निर्भर थे। समाज में वर्ण व्यवस्था को ही आधार बनाकर कार्य बांटे गए थे। अन्न उपजाने के मामले में इस काल तक यह साक्ष्य नहीं मिलते हैं कि किसान किन उपजों की खेती करते थे। रमेशचन्द्र मजुमदार के अनुसार- "गांववालों की प्रधान जीविका खेती थी। कृषिकला का महत्व कृष्टि या चर्षणि (खेतिहर) नाम से साफ व्यक्त होता है। यह नाम साधारण रूप से जनता के लिए और विशेष रूप से पांच प्रधान जनों के लिए, जिनमें प्रारंभिक वैदिक काल के लोग बंटे थे, लागू होता है। जोते हुए खेत उर्वरा या क्षेत्र कहे जाते थे। ये बहुधा नहरों से सींचे जाते थे। खाद का उपयोग भी ज्ञात था। भूमि में उत्पन्न अन्न धान या यव कहा जाता था। किंतु इन नामों की ठीक-ठीक विशेषता प्राचीनतम साहित्य से ठीक-ठीक नहीं मालूम होती।"[1]

कृषि हमारे देश में प्राचीनकाल से ही प्रचलित है, उसकी दशा में आज तक सुधार क्यों नहीं हो पाया ? यह विचारणीय तथ्य है। प्राचीनकाल से मध्यकाल और आज हम आधुनिक काल में जी रहे हैं फिर भी कृषि व्यवस्था के ढाचे में और भारतीय किसानों की स्थिति में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। सामंतवाद से लेकर आज तक किसान शोषण का ही शिकार बना हुआ है। परिवर्तन के नाम पर हमारे देश में सिर्फ नाम बदल दिए जाते हैं। राजतंत्र की समाप्ति के पश्चात और अंग्रेजों के आगमन से देश में सामंतवाद का तो खात्मा हो गया, किंतु अंग्रेजों ने सामंतवाद से अपना मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए देश में जमींदारी प्रथा को लागू कर दिया। अंग्रेजों का तो भारत में आगमन का मुख्य उद्देश्य ही भारत में व्यापार को बढ़ावा देना और मुनाफा कमाना था। इसके लिए उन्होंने भारतीय किसानों का भरपूर शोषण किया।

वे भारत से कच्चा माल विदेशों को भेजते थे। इसके लिए उन्हें जिस भी फसल की जरूरत होती थी, वे किसानों को वही उपजाने को बाध्य करते थे। जमींदार अंग्रेजों के लिए किसानों से लगान वसूलने का कार्य करते थे। वे किसानों को तरह-तरह से शोषण का शिकार बनाते थे। इस तरह 'सामंतवाद' के अंत की जगह जमींदारी प्रथा किसानों के शोषण में अपनी भूमिका निभाती रही। सुमित सरकार ने 'आधुनिक भारत' में कहा है- "देशी राजाओं और जमींदारों से तो सकारात्मक नेतृत्व की आशा और भी कम थी। 1857 के बाद से ब्रिटिश सरकार की नीति सदैव ऐसे 'सामंतवादी' तत्वों से मैत्री रखने की रही।.... समस्त व्यवस्था के अंतर्गत भारत के एक-तिहाई भाग में, जो सिद्धांत रूप में देशी शासन के अंतर्गत था, सामंतवादी तामझाम और निरंकुशता को बढ़ावा दिया जाता रहा। यह इस बात का एक और प्रमाण है कि भारत में सच्चा आधुनिकीकरण लाने में उपनिवेशवादी ब्रिटिश सरकार की रूचि कितनी कम थी।"[2]

भारत में किसानों की समस्याओं का एक बड़ा कारण हम अंग्रेज़ी शासन को भी मान सकते हैं। ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के साथ ही हमारे देश में किसानों की दशा बहुत ही खराब हो गई। कंपनी ने जमीन पर स्वयं कब्ज़ा करके जमींदार नियुक्त कर दिए। इससे किसानों के हाथों से जमीन जमींदार के पास चली जाती है। जमींदार किसानों को खेती के लिए भूमि देते हैं और कर वसूल करते हैं। जमींदारी प्रथा से किसानों पर तरह-तरह के अत्याचार किये जाते हैं। आज हमारे देश में कानूनी रूप से 'जमींदारी प्रथा' का अन्त हो गया है किन्तु भारत के पिछड़े गावों में व्यावहारिक रूप से यह आज भी कायम है। कंपनी का मूल उद्देश्य था मुनाफा कमाना जिससे किसानों की स्थिति बद से बदतर होती गई। बंगाल की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखे गए कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपाख्यान' में आदिग्राम के किसानों की दुर्दशा का उत्तरदायी कंपनीराज ही है। कंपनी द्वारा नियुक्त जमींदार किसानों से मनचाहा लगान वसूल करते थे यदि किसान समय से लगान देने में समर्थ नहीं है तो उनकी जमीन वापस ले ली जाती थी। इस तरह से काश्तकार जमींदारों की दया पर ही निर्भर होता था और जमींदार किसानों से धन लूट कर कंपनी का खजाना भरते थे। इस सन्दर्भ में कुणाल सिंह ने उपन्यास 'आदिग्राम उपाख्यान' में लिखा है- "इस

प्रकार रातों-रात पूरे इलाके पर ईस्ट इंडिया कंपनी का राज हो गया। अब किसान अपनी ही जमीन पर मजदूरी करेंगे। फसल बोने से पहले उन्हें कंपनी की इजाजत लेनी पड़ेगी कि धान रोपें या मान लीजिये अफीम या नील की खेती करें।"[3] कंपनी द्वारा किसानों की जमीन पर अधिकार किये जाने के पश्चात किसानों पर कंपनी के अत्याचार भी शुरू हो जाते हैं। जिस जमीन पर किसान अन्न उपजा रहे हैं वही अन्न कंपनी उन्हें खाने तक नहीं दे रही है। 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास में लिखा है- "बंगाल में फिर दूसरा अकाल पड़ा। तब तक ईस्ट इंडिया कंपनी नलहाटी बाजार में अनाज की आढ़त और गोदाम बनवा चुकी थी। यहाँ का अनाज बैलगाड़ियों में लादकर कलकत्ते पहुँचाया जाता। कहा जाता है कि जब दूसरा अकाल पड़ा, कंपनी के गोदामों में कोई एक लाख मन धान जमा रखा हुआ था।"[4]

सन 1765 में जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल के सूबे की संग्रह की कमान संभाली, तभी से वहां किसानों की दुर्दशा की शुरुआत हो गयी थी। अंग्रेजों ने बंगाल के किसानों से कर वसूलने के लिए तरह-तरह की प्रथाएं लागू कीं। जमींदारी, रैयतवारी और महलवारी प्रथाएं कर वसूलने के लिए ही बनाई गई थीं। जमींदार अपने को कंपनी का सच्चा हितैषी दिखाने के लिए किसानों से लगान वसूलते और उन पर तरह-तरह के अत्याचार करते। प्राकृतिक प्रकोप हो या अन्य किसी भी कारणवश फसल खराब होने पर भी कंपनी किसानों को कोई छूट नहीं देती थी। जमींदार हर हालत में कंपनी को उतनी राशि देते थे, जितना वे कंपनी से तय किए रहते थे। बंगाल में पड़े भयंकर अकाल के समय भी कम्पनी किसानों से उसी मुस्तैदी से कर वसूलती थी। किसान रोता-गिड़गिड़ाता रहता किंतु उसे कोई राहत नहीं मिलती थी इस प्रसंग में सब्यसाची भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक' आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास' में लिखा है- "क्वार-कार्तिक में एक बूँद पानी नहीं बरसा। खेतों में फसल लगी थी उसे राजा के कर्मचारियों ने सिपाहियों के लिए खरीद लिया। लोगों को खाना नहीं मिल पा रहा था... पर मुहम्मद रजा खां मालगुजारी वसूली का मालिक था... उसने एकदम से सौ पर दस रूपए मालगुजारी बढ़ा दी। पूरे बंगाल में हाहाकार मच गया। लोगों ने पहले भीख माँगना शुरू किया, बाद में भीख देने वाला भी कोई नहीं रहा। लोगों ने अपने बैल-बछिया बेच दिए

। हल-फाल, घर द्वार बेच दिए और बीज के लिए रखा धान खा गए, जमीनें बेच दीं, फिर अपनी लड़कियों को बेचने लगे, फिर अपने लड़के बेचने लगे। बाद में लड़की-लड़कों, स्त्रियों को भी कौन खरीदे ? खरीददार कहीं नहीं थे, सभी सिर्फ बेचना चाहते थे। कुछ भी खाने को नहीं रहा तो लोग पेड़ों के पत्ते खाने लगे, घास खाना शुरू किया। जंगली जड़ी-बूटी खाने लगे। कुछ देश छोड़कर परदेश भाग गए। जो भागे वे परदेश में भूख से मरे। जो नहीं भागे वे न खाने लायक चीजें खाकर, बिना खाए या बीमार होकर मरने लगे।"[5]

कंपनी के फ़ौज के कमांडर गाँव में घूम-घूम कर मुनादी कराते हैं कि जो भी किसान कंपनी को मालगुजारी नहीं देगा उसे कोड़ों से पीटा जाएगा। इसके बाद भी अगर उसने मालगुजारी नहीं चुकता की उसे सूली पर चढ़ा दिया जाएगा। बंगाल अकाल के समय जब वहां के किसान भूखे मर रहे थे, तब भला उनके पास मालगुजारी चुकाने के लिए रकम कहाँ से आती। ऐसे समय में कंपनी उन्हें कोई सहूलियत नहीं देती है। अकाल के समय किसानों की दुर्दशा को 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास की इन पंक्तियों में दिखाया गया है- "पाँच-छ: साल बाद भीषण अकाल पड़ा। अब तक दर्ज इतिहास में बंगाल पर पड़ने वाला पहला अकाल। लोग दाने- दाने के लिए मोहताज हो गए। चारो तरफ हाहाकार मच गया। लेकिन कंपनी ने मालगुजारी में कोई रियायत नहीं बरती। खाने को कोई अन्न नहीं, मालगुजारी कहाँ से दें। बच्चे बूढ़े सब पर कोड़े बरसे, औरतों ने अफसरों की सेवा-टहल तक कुबूल कर ली, फिर भी मालगुजारी चुक्ता करने भर पैसे इक्कट्ठा नहीं हुए।"[6]

ईस्ट इंडिया कंपनी ने हमारे देश में इस तरह अपनी पैठ बना ली कि धीरे-धीरे किसानों की भूमि पर कब्ज़ा कर लिया। बंगाल की सरजमीं पर ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के बाद से ही वहां की जमीन पर कंपनी का कब्ज़ा हो गया। तब से लेकर आज तक हमारे सामने ऐसी कई घटनाएं सामने आयीं जब वहां के किसानों को अपनी जमीन से हाथ धोना पड़ा है। किसान के लिए उसकी भूमि ही सबकुछ होती है। वह उसे बचाने के लिए सबकुछ करने को तैयार रहता है। 'नंदीग्राम' की ही बात की जाए तो किसान

अपनी जमीन किसी भी कीमत पर नहीं देना चाहते थे। उन पर बहुत से अत्याचार किए जाते हैं। किंतु अपनी भूमि को बचाने के लिए वे डटे रहते हैं। किसान फैक्ट्री के नुमाइंदों से कहते हैं- "क्या आप जानते हैं कि हमारी जमीन ही हमारी फैक्टरी है। सालेम की एक फैक्टरी लगाने के लिए हमारी तरह के हजारों किसान अपनी-अपनी फैक्टरी से अपना स्वामित्व छोड़ दें।"[7] कंपनी का मूल उद्देश्य था किसानों की जमीन पर अपना कब्ज़ा करना था जिससे किसानों स्थिति बद से बदतर होती गई।

आजादी के बाद देश से जमींदारी प्रथा तो खत्म हो गई किंतु जमींदारों के अत्याचार नहीं समाप्त हुए। इस दृष्टि से भीमसेन त्यागी का 'जमीन' उपन्यास उल्लेखनीय है। जमींदारों के अत्याचार से किसान किस तरह से पीड़ित थे, इसका उदाहरण हमें भीमसेन त्यागी के 'जमीन' उपन्यास का अकेला महकू ही दे सकता है- "महकू अपनी कोठरी के आगे छप्पर में जमीन पर बैठा बान बट रहा है। जिस्म पर सिर्फ आठ अंगुल चौड़ी लंगौटी। जिस्म जली लकड़ी जैसा रुखा और खुरदुरा।"[8] महकू जिस चारपाई पर बैठा है वह टूटने के कगार पर है। उसकी चारपाई के चार पाये ही उसकी गरीबी और दीनता को प्रकट करने के लिए काफी है- "कामरेड जोशी उस नायाब चारपाई को देखते रह गए। उसके चारों पाये अलग-अलग नस्ल के हैं। एक खराद किया गया पाया उस ज़माने का है, जब कभी यह चारपाई बनी होगी। बाकी तीन इतिहास के अलग-अलग दौर के साक्षी हैं। टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ियों को काटकर बिना छीले-तराशे, उसमें सुराख करके बाहीं-सेखे ठोंक दिए गए हैं। एक बाही और एक सेरवा बांस के हैं। दूसरी बाहीं ठाकुर चन्दन सिंह के बगीचे से अमरूद की शाखा काटकर बनायी गई हैं और दूसरे सेखे की जगह लोहे का जंग खाया सरिया लगा है। चारपाई के आधे बाण टूट चुके हैं। वे झालर की मानिंद नीचे झूल रहे हैं। महकू इस चारपाई पर टाट बिछाकर ठाठ से सोता है।"[9] गाँव के जमींदार ठाकुर चन्दन सिंह जो किसानों पर तरह-तरह के अत्याचार करते हैं। महकू की कई पीढ़ियाँ ठाकुर चन्दन सिंह का कर्ज नहीं चुका पाती हैं क्योंकि उसे खुद नहीं पता कि उन्होंने ठाकुर चन्दन सिंह से कितना कर्ज लिया है। उसकी पीढ़ी दर पीढ़ी ठाकुर चन्दन सिंह के यहाँ बेगार करती आ रही हैं किन्तु उनका कर्ज खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा है- "हर

साल दशहरे पर ठाकुर चन्दन सिंह महकू के अंगूठे की टीप लेता है। कलम की मार। बेचारा महकू कुछ नहीं समझता। उसे पता नहीं कि ठाकुर का क्या लेना देना है। बस, इतना पता है कि उसके दादा ने चन्दन सिंह के दादा से दो बिस्सी और दस रुपये लिए थे। कुल जमा बीस तक गिनती जानता है महकू। लंबा चौड़ा हिसाब उसकी समझ में नहीं आता। समझने से फायदा भी क्या ? कर्ज पहाड़ बन चुका है। महकू को मालूम है कि अपनी खाल बेचकर भी वह ठाकुर का कर्ज नहीं चुका सकता। तो फिर इसके अलावा क्या चारा है कि वह और उसका कुनबा ठाकुर की बेगार करता रहे।"[10]

जमींदार किसानों से बेगार कराने के साथ-साथ उनकी पत्नी और पुत्री का शारीरिक शोषण भी करते थे। जब भी किसी किसान का विवाह होता था तो वह अपनी पत्नी को मालिक के पास पैर छुवाने ले जाता है। उसकी बहू को एक दिन के लिए जमींदार के पास ही ठहरना पड़ता है। महकू की पत्नी कहती है- "इन जिमींदारों ने जैसे जमीन आपस में बाँट रखी है वैसे ही रैयत-रियाया भी। ये रैयत की जोरू को अपनी जियाजाद सिमझैं ! तूने पहले क्यूं नहीं बताया था। बता देता तो मैं वहां कभी न जाती।"[11] गाँव का कोई भी किसान अपनी पत्नी को ठाकुर के पास नहीं भेजना चाहता, किन्तु वह जानता है कि उसके चाहने न चाहने से कुछ भी नहीं होने वाला है। यदि वह अपनी इच्छा से नहीं भेजेगा तो ठाकुर जबर्दस्ती उसे उठाकर ले जावेंगे। उसे बेदखल करने की धमकी देते हैं- "गाँव की रीत ही ऐसी है। उसने खुशामद भरे लहजे में अनारो से कहा- "भागमान,एक दफै फिर कहूँ-चली चल। तू नहीं जाएगी तो ठाकुर जान ले लेगा।"[12]

जमींदार अपने ताकत और डर बनाकर ही गाँव के किसानों पर हुक्म चला रहे हैं। इन जमींदारों को भली-भांति पता है कि जब तक जमीन इनके हाथ में है तभी तक ये किसानों पर अपना हुक्म चला सकते हैं। ठाकुर रौनक सिंह कहते हैं- "इस जमीन की बदौलत ही तो हम जमींदार हैं। इसी से रुतबा कायम है। दयामी पट्टे लिख दिए तो समझो खुद अपने हाथ कटवा लिए। यह ठीक है कि लगान फिर भी

मिलता रहेगा। लेकिन किसी को बेदखल करने का हक तो नहीं रहेगा। असल चीज़ तो हक है वही न रहा तो फिर हमारी दाब में कौन आयेगा और दाब न रही तो हो चुकी जमींदारी।"[13]

जमींदारों के अत्याचार से किसानों को मुक्त कराने के लिये हमारे देश में 1950 में जमींदारी उन्मूलन कानून पास किया गया। 'जमींदारी उन्मूलन' कानून पास होने के पहले ही जमींदारों को इस बात की भनक लग जाती है। उन्हें यह बात भली-भांति पता है कि कानून पास होते ही जमीन उनके हाथ से निकलकर सीधे सरकार के कब्जे में चली जाएगी। इसलिए वे किसानों के शोषण का एक और मौका कैसे गंवा देते। वे किसानों को भूमि पट्टा कराने का लालच देकर उनसे पैसे ऐंठने लगे। किसानों के हाथ में जमीन तो आई नहीं हाँ भूमि का पट्टा कराने के लिए उन्हें अपना घर-बार अवश्य बेचना पड़ गया। क्योंकि जमींदारों ने चलाकी से अपनी भूमि अपने सगे संबंधियों के नाम कर दी। जिससे वे पूर्ववत जमींदार ही बने रहें। रामकिशोर मेहता के अनुसार- "चतुर। चालाक जमींदारों। जागीरदारों को आने वाले जमींदारी उन्मूलन कानूनों की हवा उनके कानून बनने से पहले ही लग गयी थी। उन्होंने अपनी जागीर का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने रिश्तेदारों संबंधियों के नाम किसानी के रूप में पहले से ही दिखा दिया, जिससे जमीन का वह हिस्सा उनके वास्तविक कब्जे में बना ही रह गया और जिस पर जमीन से वंचित किसान आज भी खेती कर उपज का एक बहुत बड़ा हिस्सा उन्हीं जमींदारों को दे देते हैं।"[14]

'जमीन' उपन्यास में जमींदारी उन्मूलन कानून का किसानों पर पड़े दुष्प्रभाव को दिखाया गया है। जमींदार किसानों को जमीन पट्टा कराने के लिए कहते हैं। सौ रुपए में एक बीघे भूमि का पट्टा यदि किसान पट्टा नहीं करवाते हैं तो उनको बेदखल कर दिया जायेगा। तमाम किसान पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ता है किन्तु वे इतना पैसा कहाँ से लाएँ कि जमीन का पट्टा करा सके। रतनू जिसके पास दस बीघे जमीन है। उसे पट्टा कराने के लिये एक हजार रुपये नकद चाहिए, किन्तु रुपये कहाँ से लाये। जमीन बचाने के लिए उसे महाजन पुन्नू के पास जाना पड़ता है। पुन्नू किसानों को पैसे देकर उन पर ब्याज पर ब्याज चढ़ाता है और अब उसे पता है कि रतनू के पास उसके घर को छोड़ और कुछ नहीं बचा है। तो वह कहता है कि

अपने मकान को मेरे पास गिरवी रख दे। रतनू जिसके पास सिर्फ मकान ही है जो उसके बाप दादा की निशानी है। यदि यह मकान भी न बचा तो उसका परिवार कहाँ रहेगा। जमीन बचाने के लिए उसे अपना मकान तक गिरवी रखना पड़ता है। वह सोचता है कि यदि जमीन बच गई तो वह मेहनत करके मकान भी छुड़वा लेगा। भूमि पट्टा कराने के बाद किसानों को पता चलता है कि उन्हें सरकारी लगान का दस गुना चुकाना होगा, तब कहीं जमीन उनके नाम होगी।

किसान बेचारे एक बार फिर जमींदारी जाते-जाते उनके शोषण के शिकार हो जाते हैं- "रतनू जमींदारी खात्मे की खबर सुनकर जितना खुश था, उतना ही उदास हो गया। खुश इसलिए कि वह हमेशा-हमेशा के लिए रौनक सिंह के फंदे से निकल जाएगा और उदास इसलिए कि उसे पता होता कि सरकार क़ानून बना रही है तो वह दमामी पट्टा क्यों कराता ! ठग लिया ठाकुर रौनक ने ! रौनक ही क्यों। चन्दन सिंह ने तो और भी ज्यादा दमामी पट्टे किये। बड़ी कुत्ती जात है जमींदार की। इन्होंने पहले ही सूंघ लिया था कि जमींदारी खत्म होने वाली है। बस रगड़ दिए बेचारे काश्तकारों को।"[15] जो किसान आजादी आने और जमींदारी प्रथा के खत्म होने से खुश थे, उन्हें इसका को लाभ नहीं हुआ उनकी स्थिति पूर्ववत ही बनी रही। अरुण प्रकाश के अनुसार- "खेती-बारी और पशुपालन के बूते अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता गाँव और बेहतरी का स्वप्न पाले उसके किसान। इसी से जुड़ा है आजादी का सपना। यह पूरा हो तो उसके सारे सपने पूरे हो जायेंगे। आजादी आयी भी लेकिन किसानों की जिन्दगी में बेहतरी का स्वप्न धरा का धरा रह गया।"[16] जमींदारी प्रथा तो समाप्त हो गई, किन्तु किसानों की समस्याएं वैसे ही बनी हुई हैं। रतनू और चंपा अपने खेत में जी-जान लगाकर मेहनत करते हैं किन्तु उन्हें पेट भरने लायक अनाज नहीं मिल पाता है। किसी तरह से वे कर्ज लेकर अपना खर्च चलाते हैं। पेट भरने लायक अनाज अगर जुटा भी लें तो उनके सामने तीज-त्यौहार बच्चों की पढ़ाई का खर्च भी है। वे यही नहीं तय कर पाते कि किस तरह से अपने बेटे की फीस भरें। हमेशा उन्हें यही डर लगा रहता है कि यही हाल रहा तो एक दिन उनकी जमीन भी उनसे छीन ली जायेगी- "बरसात आती है तो किसान के घर में सूखा पड़ जाता है। ईख के पैसे

तो पहले ही ठिकाने लग जाते हैं, बरसात आते-आते अनाज के दाने भी किनारे आ लगते हैं। दस रुपये का खर्च भी आ जाए तो किसी न किसी के सामने हाथ फैलाना पड़ता है। विजय के दाखिले में चालीस-पचास तो लगेंगे ही। और हाथ में फूटी कौड़ी भी नहीं। तो क्या करें।"[17]

हमारे देश का किसान आज भी संसाधनों की समस्या से जूझ रहा है। कृषि करने के लिए खाद-बीज के साथ-साथ सिंचाई हेतु पानी सबसे बड़ी आवश्यकता है। देश में पर्याप्त संख्या में नदी एवं नहर होने के बावजूद किसानों की फसलें सूख जाती हैं। विदर्भ आदि के किसान सूखे की समस्या से त्रस्त हैं तो बिहार के किसानों की फसलें पानी की अधिकता से खराब हो जाती हैं। सरकार नहर एवं बाँध बनाने के लिए किसानों की जमीन अधिग्रहित करती है, किंतु उनके निर्माण के बाद उन्हें सिंचाई के लिए पानी ही नहीं दिया जाता है। सरकार की तरफ से किसानों की पानी की समस्या को दूर करने के लिए कोई उपाय नहीं किए जाते हैं- "बांधों और उनसे निकली नहरों के बाद सिंचाई में सबसे अधिक भूजल का उपयोग होता है। वह भी ट्यूबवेल के माध्यम से। जिनके संचालन में बिजली की आवश्यकता होती है। बिजली की उपलब्धता बहुत बड़ी समस्या रही है। सरकारों ने हमेशा उद्योगों को, शहरी उपभोक्ता को प्राथमिकता दी है।.... किसान जिसे खेतों की सिंचाई करनी होती है, उसे हमेशा ही बिजली ऐसे समय दी जाती है जब दूसरे लोग उसका उपयोग कम करते हैं।"[18] कभी-कभी वह पर्याप्त जमीन होते हुए भी हर सीजन का फसल नहीं उगा पाता।

सिंचाई के अभाव में किसानों के खेत एक फसली हो जाते हैं, ऐसी ही समस्या से सूर्यनाथ सिंह का उपन्यास 'चलती चाकी' का मंगतराम श्वेतानंद को अवगत कराता है- "क्या करें महाराज, पानी उसमें आज तक नहीं आया। बरसाती कटाव से उसमें मिट्टी भरती गई। झाड़-झंखाड़ उग आये हैं। कुछ लोगों ने ट्यूबेल लगाये हैं, मगर जमीन में पानी इतना नीचे है कि सारे लोगों की जरूरत पूरी नहीं हो पाती। गेहूं, गन्ना वगैरह के लिए तो पानी चाहिए, इसलिए बहुत कम बो पाते हैं।"[19] इसी प्रकार सिंचाई की समस्या एम.एम. चंद्रा के उपन्यास 'यह गाँव बिकाऊ है' में देखने को मिलती है। जहां के किसानों की जमीन पानी

के अभाव में सूख रही है, और जो पानी नहर से आता भी था वह इतना प्रदूषित हो गया कि इससे गाँव की जमीन बंजर होने के कगार पर पहुंच जाती है। वह गाँव जो कभी कृषि के मामले में उस इलाके का सबसे समृद्ध गाँव था आज वहां के किसान बदहाली का जीवन जीने पर मजबूर हैं- "वह नंगला गाँव, जो कभी आजादी के इतने सालों बाद तक देश के लिए अन्न उगाता था, वह खुद अन्न के लिए मोहताज हो जाएगा, इसके बारे में सोचकर भी रूह कांपने लगी।"[20] सिंचाई की समस्या जयनंदन के उपन्यास 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' में भी देखने को मिलती है। उपन्यास का केंद्र लतीफ़गंज नामक के गाँव के किसान हैं। वहां के किसानों ने अपने खेतों में धान उगाना सिर्फ इसलिए बंद कर दिया क्योंकि उनके खेतों तक नहर का पानी नहीं पंहुच पा रहा है। लतीफगंज गाँव जहाँ धान की पैदावार इतनी अच्छी होती थी कि उस क्षेत्र को 'धान का कटोरा' कहते थे। वहाँ के किसानों की मुख्य फसल और जीविका धान की फसल पर ही निर्भर होती थी। जकीर कहता है- "भैरव, गन्ने की मार हम इसलिए सह गए यार कि हमारी रीढ़ धान के कुछ खेत बचा सकते हैं।"[21]

लतीफ़गंज गाँव में न बिजली आती है और न नहर का पानी। जकीर जैसे मझले किसानों ने किसी तरह से कर्ज लेकर बोरिंग करवाई, किन्तु उससे सिर्फ आसपास के खेतों की ही सिंचाई हो सकती है। दूर के खेत तो अभी भी सूखे ही हैं- "जकीर का चेहरा उतर गया था। पंप की पहुंच वाले खेत में उसने रोपा कर दिया था, लेकिन इतने से साल भर तो क्या तीन महीने भी लगातार चूल्हा नहीं जलने वाला थे, गन्ने के बाद धान पर ही गृहस्थी का सारा दारोमदार टिक गया था। गाँव के सभी लोग हताश-उदास इधर-उधर यों ही डोल रहे थे जबकि इस मौसम में किसी को छींकने-खांसने की फुर्सत नहीं हुआ करती थी।"[22] जकीर मध्यम दर्जे का एक सम्पन्न किसान है, किन्तु पानी की कमी से उसकी खरीफ एवं रबी दोनों ही फसल खराब हो गई। पहले उसके घर की कोठियों में कई मन चावल का भंडार रहता था किन्तु आज उसकी स्थिति यहाँ तक पहुंच गई है कि कर्ज के अलावा उसके पास कुछ भी नहीं बचा। बोरिंग करवाने के लिए उसने जो कर्ज लिया तह वह अब घटने की बजाय बढ़ता ही चला गया।

सुनील चतुर्वेदी के उपन्यास 'कालीचाट' का युनुस तो अपने खेतों में ट्यूबवैल खुदवाने के लिए अपनी दो एकड़ जमीन तक गिरवी रख देता है। वह सोचता है कि यदि खेत में ट्यूबवैल लग जाएगा तो फसल की पैदावार अच्छी होगी। बेटों की शादी हो जाएगी और अपने रेहन पर रखे खेत भी छुड़वा लेगा। किसान के सपने आज तक कभी साकार नहीं हुए हैं जो युनुस का सोचना सही साबित होगा। युनुस ने जो बोरिंग करवाई उसमें से पानी ही नहीं निकला- "सुना है ट्यूबवैल में पानी नहीं निकला," दिनेश ने हिम्मत करके सीधे पूछ लिया- "भईया, मुंह धोने जित्तो पानी भी नी हिटियो। अब कई करां। बीस हजार को जूओ खेलियो थो। हार गया। अब रंज करने से कईं होणो जानो है।"[23] युनुस कर्ज के दलदल में फंसा हुआ है। फिर भी वह सोचता है कि वह और उसका परिवार मिलकर खेत में कुंआ खोदेंगे। किंतु यहाँ भी उसे निराशा ही मिलती है। कुआं खोदते समय निकली कालीचाट को तुड़वाने के लिए उसे पाँच हजार रुपये कर्ज भी लेने पड़ते हैं। इतनी मेहनत के बाद भी न कुएं की कालीचाट टूटती है और न ही पानी निकलता है- "युनुस सूखे कुएं की तली को देखते हुए सोच रहा था। किसान की तो पूरी जिंदगी कालीचाट जैसी है। अंधियारी और कड़क। क्या मालूम यह चाट कब टूटेगी। कब इसके पीछे से भरभरा के पानी का उकाला फूटेगा और किसान की जिंदगी में ठंडे पानी के छींटे आएंगे। कब ....कब .... ।"[24] राजू शर्मा के उपन्यास 'हलफनामे' का स्वामीराम पानी की कमी को दूर करने के लिए एक के बाद एक तीन बोरिंग करवाता है, लेकिन एक भी बोरिंग से पानी नहीं आता है। स्वामीराम पर अथाह कर्ज का बोझ आ जाता है- "स्वामी की बस इतनी इच्छा थी कि अकाल का समाधान हो खेत को, जानवर को आदमी को गुजारे लायक पानी मिले। इसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार और तत्पर था। उसका धीरज अब घटता जा रहा रहा था।"[25]

3.2 महिला किसान की उपस्थिति

हमारे समाज में स्त्रियां हमेशा से कृषि कार्य में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती रही हैं, किन्तु उन्हें किसान का दर्जा अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है। जबकि खेती के हर छोटे बड़े-काम में महिलाएं पुरुष का हाथ बटाती

हैं। यहाँ तक कि पुरुष की अनुपस्थिति और उसके असमर्थ होने पर उन पर गृहस्थी एवं खेती दोनों का भार आ जाता है। अपनी मेहनत से वह दोनों कार्यों को बखूबी निभाती हैं।

सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में महाजन के चंगुल में फंसे किसान साहिबु जिसे समय-समय पर महाजन भीमा बा के यहाँ बेगार करना पड़ता है। भीमा बा के घर पर पानी की बैलगाड़ी ले जाते समय साहिबु का पैर बैलगाड़ी के पहिये के नीचे आ जाता है। उसका पैर तक काटना पड़ता है। इलाज के लिए जो भी पैसे लगते हैं उसके बदले में भीमा बा ने साहिबु की जमीन गिरवी रख ली। अब साहिबु की पत्नी पर सारा कार्यभार आ जाता है- "घर और खेती बाड़ी का पूरा काम रेशमी ने सम्हाल लिया था। वह सुबह से शाम तक घर और खेती के बीच चकरघिन्नी बनी रहती। इन सब कामों के बीच वह साहिबु के हर छोटी-बड़ी जरूरत का ध्यान रखती। वह इस बात की पूरी कोशिश करती कि साहिबु को अपंग होने का अहसास ना हो।"[26] रेशमी साहिबु को यह भी दिलासा देती रहती है कि भीमा बा के पास रेहन की जमीन को भी वह मेहनत करके छुड़ा लेगी। भीमा बा के खेत में रेशमी बेगार करती है कि किसी तरह से भीमा बा के कर्ज का ब्याज चुकता होता रहे। अपने दुःख एवं कर्ज से मुक्ति के लिए अपंग साहिबु घर और बाहर का सब बोझ रेशमी पर डालकर घर छोड़कर चला गया किन्तु रेशमी उसे तो अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाना था- "रेशमी का सोचना था कि जमीन पर साहिबु के बाद अब सुरेश का हक है और सुरेश को अपना हक मिलना चाहिए। साहिबु का कर्जा चुकाना उसका फर्ज है और वह मेहनत मजूरी करके पाई-पाई चुका देगी।"[27] रेशमी मजदूरी करके किसी तरह से अपना और अपने बेटे का पेट पालती है। जब रेशमी को यह पता चलता है कि उसकी जमीन पर भीमा बा ने धोखे से कब्ज़ा किया है। वह कलेक्टर के सामने बोलने से बिल्कुल नहीं डरती। जिस भीमा बा के सामने आज तक किसी की बोलने की हिम्मत नहीं पड़ी उन्हीं के सामने रेशमी कहती है- "या तो मैं अब तक इसे चुप थी कि म्हारा माथे थारो करजो है। पर आज सच्चई सामने आ गई है। तू जो असल मरद को मूत हो तो आज का बाद म्हारी जमीन पे पांव धर के बता जे। काट के नीं फेंक दू तो मैं भी एक बाप की औलाद नी।"[28]

सरकार की तरफ से यह नियम बना दिया गया कि पिता की जायजाद में से पुत्री को भी हिस्सा मिलेगा किन्तु अभी भी व्यावहारिक रूप से यह हमारे यहाँ नहीं लागू हुआ है। पुत्र चाहे जमीन पर कृषि न करके उसे बेचकर शहर पलायन कर ले, किन्तु आज भी माता-पिता अपनी जमीन में से पुत्री को हिस्सा नहीं देना चाहते। रुक्मणि जिसके जीने का सहारा उसके पिता के खेत ही हैं। फिर भी उसकी माँ यह नहीं चाहती कि रुक्मणि को वह जमीन दे- "रुक्का के काय को हिस्सो।..... छोरी के कोई जमीन जायजाद में हिस्सो दे है।"[29] भीमा बा के चंगुल से जब से रेशमी के खेत छूटे तब से उसने खेती में ही अपना पूरा मन रमा लिया था। अपनी भूमि के साथ उसकी तमाम तरह की यादें जुड़ी हुई हैं। इसीलिए जब उसके पुत्र सुरेश ने जमीन बेंच दी तो वह पागल हो जाती है।

कृषि में महिलाओं के योगदान का अंदाजा मिथिलेश्वर के तेरा 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास के बलेसर के इस कथन से लगता है- "पत्नी के बिना इस गाँव में अकेले रहते हुए खेती-किसानी करने का उनका मकसद ही समाप्त हो जाएगा। तब इस निष्ठा से वह किसके लिए खेती करेंगे और क्यों खेती करेंगे? घर में पत्नी की उपस्थिति ही उनके लिए खेती-किसानी की प्रेरणा थी। कृषि के उपार्जन पर उनसे कम ख़ुशी उनकी पत्नी को नहीं होती थी। दोनों की समवेत ख़ुशी पर ही कृषि जीवन की उनकी गृहस्थी कायम थी।"[30] घर में पति की अनुपस्थिति में महिलाओं पर घर का सम्पूर्ण दायित्व आ जाता है, महिलाएं अपने दायित्व का निर्वहन भी पूरी निष्ठा के साथ करती है। पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों के समकक्ष महिलाओं की भागीदारी को बर्दाश्त नहीं किया जाता है।

'जमीन' उपन्यास में रतनू के जेल जाने के बाद चम्पा स्वयं अपने खेतों में हल चलाती है, स्वयं बीज बोती है। चम्पा का ऐसा करना गाँव के जमींदार ठाकुर चंदन सिंह को अच्छा नहीं लगता। वो कहते हैं- "पंचो आज हमारे गाँव में एक अधर्म का काम हुआ है। रतनू की बहु चम्पा सरेआम हल चलाते देखी गयी है। सारा गाँव इसका गवाह है। हल चलाना धरती माता के पेट को फाड़ना है। पाप है। यह भले आदमियों का नहीं चांडालों का काम है। चम्पा हल चलाकर चाण्डालिनी बन गई है। इसके इस कर्म की

सजा पूरे गाँव को भुगतनी होगी..... ऐसी चाण्डालिनी औरत को सजा जरूर मिलनी चाहिए।"[31] आज भी यदि कोई महिला अपने खेत में स्वयं हल चलाती है या खेती संभालती है तो समाज उसे सम्मान की दृष्टि से भी नहीं देखता है। चन्दन सिंह रतनू को यह सोचकर जेल भिजवाता है कि अब रतनू के न रहने पर उसके खेत खाली रह जायेंगे, उसके बच्चे भूखो भरेंगे। किन्तु चम्पा अपनी मेहनत से उसके मंसूबों पर पानी फेर देती है। वह सुबह खेतों में जाती, अपने खेत की निराई, गुड़ाई करती है। उसके मेहनत से उसके खेत में हर साल की अपेक्षा ज्यादा पैदावार होती है।

राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास की पारबती हमारे समक्ष एक सशक्त महिला किसान के रूप में उभरती है। वह अपने घर से लेकर खेत का संचालन करती है। यहाँ तक कि भूमि अधिग्रहण के विरोध में वह सबका नेतृत्व करती है- "म्हारी जघे-जमीन पर कब्ज़ा हो रया जो न बोलूं। ई न होगा। हम नई मानते ऐसी पंची पंचैत को। न हम मानते कासीनाथ की कारस्तानी को। खुद काहे नईं आता सामने। काहे को प्यादे भेजता हुआ। आके हमसे बात करे। अपने घर के अंदर बना ले जो उसको बनाना हो। हमने ईब इनकार किया उसको तो किया। ईब जो हो सो हो जाए, हम अपनी जमीन न देंगे। म्हारा तो येई फैसला हुआ। गरचे पंचैत कासीनाथ की चेरी बन जाए तो हम दरबदर हो लें। ई न होगा।"[32] स्त्रियाँ आज क्या नहीं कर सकती। खेती से लेकर परिवार, बच्चे, पति, भोजन यहाँ तक की फसल बोने और काटने तक का दायित्व उन पर रहता है। ऐसी ही स्त्री किसान के रूप में संजीव के 'फांस' उपन्यास की आशा हमारे सामने आती है। जिसका पति शराबी है। आशा के ऊपर ही घर की सारी जिम्मेदारियां हैं। वह मेहनत करके खेत भी खरीदती है। आशा के आत्महत्या करने पर उसका पति सुरेश कहता है- "देखो साहब, तुम उसकी मौत को 'पात्र' घोषित करो या 'अपात्र' तुम्हारी मर्जी, मगर तुम्हें कोई हक नहीं कि मेरी बायको को लांछित करो। वो मुझसे ज्यादा पढ़ी-लिखी, सच्ची किसान।"[33]

कृषि के क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता पुरुष के बराबर है किन्तु उनकी मेहनत को पुरुषों की तुलना में कम आँका जाता है। आज कृषि कार्य में पुरुषों के कार्य के लिए कई आधुनिक तकनीकि

विकसित हुई हैं जैसे ट्रैक्टर, सिंचाई के साधन, कीटनाशक छिड़काव किन्तु स्त्रियों के कार्यों को सरल बनाने वाली तकनीकि नहीं के बराबर विकसित हुई हैं। तमाम तरह की समस्याओं एवं जिम्मेदारियों को निभाते हुए भी कृषि कार्य में महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

3.3 किसान और सरकारी नीतियां

भारतीय समाज में कृषि एवं किसान की दुर्दशा से कोई भी अनजान नहीं है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी किसानों की समस्याएँ यथावत। हमारे समाज की सबसे बड़ी आबादी कृषि पर निर्भर है। इसके बावजूद हमारे यहाँ किसानों की अनदेखी ही होती रही है। इसी कारण से किसानों की स्थिति में सुधार नहीं आया है। किसानों की स्थिति में सुधार लाने के दावे किए जाते हैं, इसके लिए कुछ नीतियां भी लागू की जाती हैं। फिर भी हमारे देश का किसान समस्याओं में ही जी रहा है। सरकार द्वारा किसानों की स्थिति में सुधार लाने के लिए जो नीतियां बनाई जाती हैं, वे किसानों को ध्यान में रखकर नहीं बनाई जाती हैं। अपितु वे पूंजीपतियों को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं। सरकार द्वारा चुनावी रैलियों में किसानों एवं मजदूरों के लिए वादे तो किए जाते हैं। लेकिन वे वादे कभी सच नहीं होते हैं।

किसानों की समस्या को दूर करने के लिए चकबंदी और जमींदारी उन्मूलन जैसे कानून तो लागू किए गए, लेकिन उसका असल फायदा बाहुबली जमींदारों को ही मिला। किसान बेचारे तो अपनी उसी दीन-हीन दशा में जीवन गुजारने पर मजबूर हैं। 'किसानों के साथ बर्बरता के पीछे' लेख में आशुतोष ने कहा है कि- "आजादी की लड़ाई के दौरान भूमि सुधार और जमींदारी उन्मूलन का वादा कर कांग्रेस ने भारत की विराट किसान जनसंख्या का समर्थन हासिल किया था। लेकिन आजादी के बाद भूमि सुधार निहायत अनमने ढंग से लागू किए गए। जानबूझ कर भूस्वामियों के लिए बच निकलने के हजारों कानूनी रास्ते छोड़ दिए गए। जमींदारियों तो खत्म हो गयीं, लेकिन जमींदारों का रुवाब बना रहा।"[34] जो भी नीतियां लागू की जा रही हैं उससे लघु एवं सीमांत किसानों की स्थितियों में दिन-प्रतिदिन गिरावट हो रही है।

आजादी के बाद देश के कुछ राज्यों में चकबंदी व्यवस्था लागू की गई कि किसानों की अलग-अलग जगहों की जमीनों को चक के रूप में एक ही जगह कर दिया जाए। इस व्यवस्था से किसानों की जो स्थिति हुई। राजू शर्मा के 'हलफनामे' उपन्यास के मकई के कथन से देखा जा सकता है- "गाँव में चकबंदी पूरे चार बरष चली थी, मैं दस साल का रहा हूँगा..... चकबंदी क्या थी, दिन दहाड़े की लूट थी.... पूरा गाँव पिस गया, रोज की कलह और झगड़े.... उस पर न्याय की, मुकदमों और सुनवाई का ढकोसला। सरकारी कारिंदे चकों की नीलामी में लगे थे.... धन पूजो, कहीं अफसर, ओहदा पकड़ो और जो चाहो चक अपने नाम करा लो.... नियम की ऐसी तैसी, हर घर में युद्ध, बलवान दिन भर लाठी भांजे। ऐसा थरथर माहौल पूरे चार बरस तक.... ।"[35] सामाजिक विकास के नाम पर हमारे यहाँ किसानों की जमीनों को अधिग्रहित कर लिया जाता है। कभी सड़क, कभी हॉस्पिटल, कभी मॉल बनाने के लिए किसानों को लालच दिया जाता है कि उनको रोजगार मिलेगा। किन्तु एक बार जमीन छिन जाती है तो न उनके पास रोजगार होता है न जमीन। संजीव का 'फांस' उपन्यास इस स्थिति को बेहतर तरीके से अभिव्यक्त करता है- "भविष्य का सुपर मेगासिटी। न्यूयार्क सिटी से बड़ा ! प्रत्येक किसान परिवार को दो-दो नौकरियाँ देने का आश्वासन देकर ले ली जमीन। न नौकरी दी न जमीन, न पैसा। आशा-निराशा के बीच कुत्ता बने दौड़ रहे हैं किसान पीछे-पीछे। क्या पता, दिन बदल ही जाएँ ! ।"[36]

भूमि अधिग्रहण की समस्या को राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास में भी दिखाया गया है। कासीनाथ किसानों की जमीन हड़पने के लिए तरह-तरह के लालच देता है। वह 'उदास गाँव' के किसानों से कहता है कि तुमने अपना पूरा जीवन इसी खेत में मेहनत करके खपा दिया है, किन्तु आज तक तुम्हें क्या मिला है ? वह उस इलाके में सीमेंट की फैक्ट्री लगाना चाहता है। कासीनाथ किसानों से जमीन लेकर वहां पर कॉलेज और मॉल का निर्माण भी करना चाहता है- "गर तुम लोग अपनी जमीन दो तो हो जाएगा वकास और गर ना दो तो समझो इस कीचड़-चभड़ में तुमारी हड्डियां गलती रहेंगी। गरचे नासमझी करनी हुई तो फेर हड्डियां गलाते रहो। फेर कुछ न होने वाला तुम लोगों का। वकास को जमीन दोगे तो ई बूझो

जे चार पैसे तुमारे गल्ले में आयंगे। पीले सरोवर के चार किनारों पर शहर-बाजार बसा दूंगा। सब के सब मालामाल हो जाओगे।"[37] जिस जमीन पर किसान पीढ़ी दर पीढ़ी खेती करते आये हैं। उस पर कासीनाथ कॉलेज खुलवाना चाहता है। जो कासीनाथ पारबती के बेटे को झूठे क़त्ल के केस में फंसा देता है। उससे किसानों की भलाई की उम्मीद कैसे की जा सकती है। जब से हमारा देश स्वतंत्र हुआ है यहाँ की सरकार विकास और देश में औद्योगीकरण को बढ़ावा देने में ही लगी हुई है। देश में तो विकास हो रहा है किंतु किसान पीछे जा रहा है। विकास कार्य के लिए किसानों की जमीनें अधिग्रहित की जाती हैं। विकास कार्य का किसानों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। उनकी जमीनें अधिग्रहित कर ली जाती हैं। किसान अपनी जमीन के सहारे ही जीवन जीता है। भूमि अधिग्रहण होने के कारण ही किसान धीरे-धीरे भूमिहीन होते जा रहे हैं। रामशरण जोशी ने अपने एक लेख में इस संदर्भ में लिखा है- "खेतिहर संघर्षों को उत्तर औपनिवेशिक भारत के विभाजन दबावों के परिप्रेक्ष्य में भी देखा जाना चाहिए। क्योंकि स्वतंत्र भारत का अपना विकास एजेंडा है। जब विकास होगा तो विस्थापन भी होगा। विस्थापन होगा तो पलायन होगा। पलायन होगा तो भूमिहीनता बढ़ेगी और सीमांत खेतिहर कालांतर में शहरी सर्वहारा में तब्दील हो जाएगा। असंगठित श्रमिक के रूप में वह दर-दर की ठोकरें खाता फिरेगा।"[38]

कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास में केमिकल हब स्थापित करने के लिए किसानों की जमीनें हड़पी जाने लगीं। कंपनी की तरफ से किसानों को आश्वासन दिया जाता है कि आदिग्राम में कारखाना स्थापित होने के पश्चात यहाँ का विकास होगा। आज आप लोग जिस जमीन पर खेती करके अपना पेट भी नहीं भर पाते, वहीं कारखाना निर्माण के पश्चात आपकी नौकरी लग जायेगी। जब नौकरी लगेगी तो आपको हर महीने वेतन मिलेगा और तब आप चैन की जिन्दगी गुजार सकेंगे- "न सूखे बरसात की फिकिर, न फसल को कीड़ा-पाला लगने का डर। मैं कहता हूँ कि एक बार जब कारखाना बैठ जाएगा तो फिर आप देखेंगे कि यह आदिग्राम, अपना पुराना आदिग्राम नहीं रह जाएगा।"[39] ये सब राज्य सरकार के साथ मिलकर कंपनी का किसानों को ठगने का एक तरीका होता है। भोले-भाले किसान किसी तरह

से एक बार इनके जाल में फंस जाए बस। केंद्र सरकार हो या राज्य सरकार जिन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों को किसानों से भूमि लेकर स्थापित करती है, वही किसानों की समस्याओं को बढ़ाती हैं।

किसी भी भूमि को जब कारखाना खोलने या अन्य किसी उद्देश्य से अधिग्रहित किया जाता है तो वहां के किसानों को जमीनी स्तर पर भी कई तरह की कठिनाइयों से जूझना पड़ता है। आए दिन वहां के धमाकों और शोर-शराबे से किसानों की नींद हराम हो जाती है। जमीन छिन जाने से किसानों की भावना आहत होती है। सारी समस्याओं को भूलकर वह अपनी जमीन दे भी देते हैं, फिर भी उनसे किए गए वादे कभी पूरे नहीं किए जाते हैं। कभी-कभी कंपनी की स्थापना के कुछ दिन बाद ही किसी कारणवश फैक्ट्री बंद हो जाती है तब न तो उनके पास जमीन बचती है न ही नौकरी। पुष्पराज ने 'नंदीग्राम डायरी' में इसे इस प्रकार से उल्लेखित किया है- "सरकार ने किसानों को धोखे में रखकर नौकरी और अमीरी का प्रलोभन देकर 350 एकड़ जमीन सी.पी.टी कंपनी को दिलायी। जमीन से बेदखल हुए 142 कृषक तब कंपनी में कुछ वर्ष ठेका मजदूर भी रखे गए, पर जल्दी ही जेलिंघम प्रोजेक्ट की हवा निकल गयी। जमीन अब तक सी.पी.टी कंपनी के कब्जे में है।"[40] आदिग्राम में जिस भूमि पर कंपनी का निर्माण हुआ था, वह कंपनी थोड़े दिन बाद बंद हो गई। अब किसानों के पास न तो जमीन है न नौकरी।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभाव ने हमारे यहाँ के किसानों की दशा को और भी खराब कर दिया है। आज सब कुछ नकदी हो गया है। किसान को हर काम के लिए नकद पैसा देना पड़ता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के दुष्प्रभाव को संजीव ने अपने 'फांस' उपन्यास में इस तरह से अभिव्यक्त किया है- "किसान से साहूकार बनने चले थे न। अन्न नहीं पैसा चाहिए, कच्चा पैसा। थूक लगाकर हरी-हरी नोट गिनोगे। इस पर मोहन दादा ने क्या कहा था, लड़कों को फीस देनी है, क्या दोगी धान, जोआरी या कापूस ? रेल, बस में टिकट मागेंगे, कौन सा अन्न दोगी ? पैसा ! पैसा ! पैसा ! हर जगह पैसा ! तुम चाहो तो भी गुजरे जमाने में नहीं लौट सकतीं, जब सामान से सामान की अदला-बदली हो जाती।"[41]

भारत कई अनाज और फलों की जन्मस्थली रहा है। यहाँ पर सिंधु-घाटी सभ्यता में लगभग पांच हजार साल पहले गेंहू की खोज के साथ-साथ मटर और जौ की खोज भी हुई। खेती करने के अन्य संसाधन एवं सिंचाई आदि की प्रक्रिया का विकास हमारे देश में प्राचीन काल में ही हो गया था। प्राचीनकाल से ही भारत खेती-किसानी में आत्मनिर्भर रहा है। कृषि समाज में 1962 से 2004 तक का समय 'हरित क्रांति' का काल कहा जाता है। इस दौरान देश में अनाज के उत्पादन में भारी मात्रा में वृद्धि दर्ज की गई। किंतु यह वृद्धि दर सिर्फ गेहूं और धान के उत्पादन में हुई। कृषि के अन्य उत्पादन में गिरावट पर हरित क्रांति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बाकी अनाज के उत्पादन में गिरावट आती गई। दलहन आदि की कमी को भारत अन्य देशों से आयात करके पूरी करता है। हरित क्रांति के आगमन ने भारत में कृषि के नए तकनीकि एवं नए बीजों के प्रयोग पर बल दिया। इससे बड़े किसानों को तो फायदा हुआ किंतु छोटे किसान कर्ज में डूबते चले गए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन से भारत में रासायनिक खाद एवं संकर बीजों का प्रयोग बढ़ता गया। इन कंपनियों का मुख्य उद्देश्य देश में अपने व्यापार को बढ़ावा देना होता है। इन्हें किसानों के फायदे नुकसान से कोई मतलब नहीं होता है। देवेन्द्र शर्मा के अनुसार- "अमेरिकी कंपनियाँ वालमार्ट और मोसेंटों ने हाल ही में यह कह दिया कि उनकी दिलचस्पी शोध और उस पर आधारित विकास में कतई नहीं है। बल्कि उनकी आँखे भारत में अपने व्यवसाय को बढ़ाने के अवसरों पर लगी हुई है जिनकी वहां अपार संभावना है।"[42]

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभाव से किसानों के सामने खाद-बीज की समस्या उत्पन्न हो गई है। पहले ये कंपनियाँ खुद के बीज महंगे दामों में बेचती हैं, यदि किसान किसी तरह से बीज खरीद ले तो उसे इन्हीं कंपनियों द्वारा बनाए गए कीटनाशक भी खरीदने पड़ते है। इन कंपनियों से खरीदे गए बीज को किसान दोबारा अपने खेतों में नहीं बो सकते हैं। उन्हें हर साल नए बीज खरीदना पड़ता है। संजीव ने 'फांस' उपन्यास में इस विषय पर इस प्रकार लिखा है- "पहले साल इसके कुछ फायदे हुए हों तो हुए हों, किसान चौकें, तब जब दूसरी बार ये बीज जमें ही नहीं। उन्हें तो अभ्यास था एक साल के बीज से उत्पन्न

बीज को दोबारा, तिबारा इस्तेमाल करने का ! वह हुआ नहीं। देसी बीज 7 रूपये किलो था, बी.टी. 930 रूपये प्रति किलो। पहले जो-जो वादे किये गए थे। सब खोखले साबित हुए। निराश लुटा हुआ निरुपाय शेतकरी। यहाँ से शुरू होती है किसानों की आत्महत्याएँ।"[43] बहुराष्ट्रीय कंपनियों के गलत प्रचार से किसानों को परेशानी का सामना करना पड़ता है। पहले किसान अपने खेत के बीज को संजोकर रखता था और साल दर साल उन्हीं बीजों से खेत की बुवाई करता था।

महाराष्ट्र में किसान कपास की नई किस्म बी.टी कॉटन उगाने लगे। इस बीज से शुरुआत के कुछ सालों तक तो उन्हें फायदा हुआ। बाद में उसमें रोग लगने शुरू हो गए। इसके लिए उन्हें कीटनाशक का छिड़काव करना पड़ा। कीटनाशक भी ऐसे कि फसल भी खराब हो गई- "बी.टी कॉटन इस आश्वासन के साथ आया था कि प्रथम दो छिड़काव की जरूरत कम होती जायेगी। मगर हुआ उल्टा। इल्लियाँ क्या मरतीं, मीलबाग जैसे कई भुनगे पैदा हो गए। ऐसे जर्म्स इसके पहले यहाँ नहीं थे। अब इन्हें मारने के लिए और ज्यादा तगड़े कीटनाशक की जरूरत आ पड़ी। फल यह हुआ कि फसल बीज, पानी, कीड़े और मित्र सब का नाश।"[44]

पहले किसान देशी बीजों को खेतों में बोते थे। देशी कीटनाशक से मिट्टी की उर्वरा शक्ति भी बनी रहती है और किसानों को कर्ज लेने की जरूरत नहीं पड़ती। देशी कीटनाशक किसान स्वयं बनाते थे। इस कीटनाशक का हमारे पर्यावरण पर भी कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। इससे उत्पन्न अन्न भी मनुष्य के लिए फायदेमंद होते हैं। किन्तु हाइब्रिड बीज और रासायनिक खादों के प्रयोग ने हमारे देश में बीमारी को भी बढ़ावा दिया है। संजीव ने 'फांस' उपन्यास में लिखा है कि- "कीटनाशक या मनुष्यनाशक ? यह सत्र बीज सत्र के साथ टकराता रहा। पंजाब की रिपोर्ट पेश हुई ,फसलों में कीड़े न लगें अतः कीटनाशकों का छिड़काव जरूरी है सबसे पहले प्रचलित केमिकल कीटनाशकों के साथ यह दिक्कत है कि वे मिट्टी, पानी, बीज में मिलकर हमारे संहारक सिद्ध हो रहे हैं। पंजाब और गुजरात के कितने ही किसान कैंसर और दूसरी बीमारियों से ग्रस्त हो चुके हैं।"[45] मोंसेंटो कंपनी के प्रभाव से महाराष्ट्र में जिस बी.टी कॉटन का प्रचार बढ़ा

उसने किसानों की समस्याओं को बढ़ा दिया। महंगे बीज, महंगे खाद से किसान तबाह हो गए। देशी बीज, देशी कपास का मूल्य घट गया, जबकि मोंसेंटो द्वारा महंगे दामों पर बीज बिक रहा था। इस तरह किसानों की लागत बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। प्रो. नवले ने कहा है कि- "इस उपन्यास में मोंसेंटो कंपनी के बी.टी कॉटन के उत्पाद को लेकर गलत प्रचार किया गया है। मोंसेंटो कंपनी ने दावा तो यह किया था कि जेनेटिकली मोडिफाइड अर्थात बी.टी. कॉटन को नहीं खायेंगे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।"[46] बी.टी. कॉटन आने के बाद से पुराने देशी बीज का मिलना ही बंद हो गया। एम.एम.चंद्रा के उपन्यास 'यह गाँव बिकाऊ है' का बल्ली मध्यम दर्जे का किसान है। वह मल्टीनेशनल कंपनी से बढ़िया बीज खरीदकर फसल की बुआई करता है। उसे लगता है कि उसका पुराना कर्ज उतर जाएगा। लेकिन खेत में एक भी कपास नहीं उगता है। महंगे, खाद, बीज, कीटनाशक प्रयोग के बावजूद उसे कोई लाभ नहीं प्राप्त हुआ। इस तरह से बल्ली कर्ज में डूब गया- "बल्ली को नहीं पता था कि बढ़िया बीज के साथ, उसी कंपनी का महंगी कीमत पर खाद और कीटनाशक भी खरीदना पड़ेगा, क्योंकि अन्य खाद और कीटनाशक का कोई प्रभाव आधुनिक खेती पर नहीं पड़ता। बीज, खाद और कीटनाशक एक ही कंपनी से खरीदना बल्ली की जरूरत नहीं, मजबूरी थी।"[47] आत्मनिर्भर किसान अब धीरे-धीरे कंपनियों के ऊपर निर्भर हो रहा है और हमारी सरकार भी इन्हीं को मुनाफा कमवाती है।

आधुनिक बीज और खाद के इस्तेमाल से पहले तो किसानों को मुनाफा होता है, लेकिन बाद में वही उनके कर्ज का कारण बन जाती है। औद्योगीकरण के बढ़ते प्रभाव से हमारा समाज किस तरह से प्रभावित हो रहा है। सुनील चतुर्वेदी के उपन्यास 'कालीचाट' में इसका बहुत ही अच्छा वर्णन किया गया है। जगतिया में कंपनी का ऑफिस बन रहा है। कंपनी ने गाँव-गाँव में जमीन खरीदने के लिए दलाल नियुक्त कर रखे हैं। इन दलालों का एक ही काम है कि किसी तरह से किसानों को लोभ देकर उनकी जमीन हथियाना है।

गाँव के युवा जो अब खेती किसानी से धीरे-धीरे कट रहे हैं, उनको कंपनी की चकाचौंध अच्छी लगती है। कंपनी के दलाल गाँव के युवा को बहलाकर उनसे जमीन लेना चाहते हैं- "अम्बाशंकर अपने दोनों हाथ गरदन के पीछे ले जाता है और कैंची की शक्ल में बंधी हथेलियों पर सिर टिकाते हुए बोलता- "मैंने कंपनी को अपनी दस एकड़ जमीन बेचकर बीस लाख रुपये की एफडी कर दी है। मजे में महीने के महीने दस हजार रुपए ब्याज आता है और कंपनी से पच्चीस-तीस हजार रूपया महीना मिल जाता है"..... तुम भी चाहो तो अपनी जमीन कंपनी को बेच के पैसा बैंक में रख दो और कंपनी में नौकरी कर लो। पाँच एकड़ जमीन का सौदा करवा दिया तो घर बैठे लाख रुपये मिल जायेंगे।"[48] कंपनी की चकाचौंध से गाँव के युवा अपने घर में जमीन बेचने के लिए दबाव बनाने लगे जो परिवार के सदस्यों के बीच मनमुटाव का कारण बन गया। किन्तु इन सबसे कंपनी के कार्य पर कोई असर नहीं पड़ा। गाँव के युवाओं का मन कंपनी में काम करने को बेचैन होने लगा। ऐसे में साहिबु का बेटा अपनी माँ रेशमी से अपनी जमीन बेचने को कहता है और अन्त में सुरेश रेशमी से जमीन बेचवाने में सफल हो जाता है। सारी समस्याओं से गुजरता हुआ यदि कोई अपनी फसल तैयार भी कर ले, तो उसके सामने फसल बेचने की समस्या आती है।

किसानों के सामने कुछ समस्याएं तो उनकी परिस्थितियों के कारण होती हैं। कुछ समस्याएं सरकारों की वजह से हैं। किसान दिन-रात मेहनत करता है। वह अपनी फसल के भरोसे ही भविष्य के सपने संजोता है। दिन-रात मेहनत करके तमाम आपदाओं से जूझते हुए वह फसल तैयार कर लेता है तो उसके सामने फसल बेचने की समस्या उत्पन्न हो जाती है। हमारे देश में जब किसी फसल की पैदावार अधिक हो जाती है तो उसका दाम बहुत ही कम हो जाता है। यह भी कैसी बिडंबना है कि पैदावार अच्छी न होने पर भी किसान की स्थिति खराब होती है और फसल अच्छी होने पर भी किसान समस्याओं में घिरता है। समयांतर में प्रकाशित रवींद्र गोयल के लेख के अनुसार- "खराब फसल में किसानों की हालत पतली ही रहती है। यदि सूखे की वजह से फसल खराब हो गयी तो जो लागत लगी उसके चलते घाटा होना निश्चित है। पर यदि फसल अच्छी भी हुई तो इससे उनको फायदा ही होगा यह निश्चित नहीं है।

पिछले दो सूखों के बाद 16-17 का मानसून ठीक था, और सरकारी उद्बोधन के चलते किसानों ने मोटे अनाज, तिलहन और दलहन की अच्छी फसल पैदा की। लेकिन सरकार ने वादे के अनुसार न तो समर्थन मूल्य ही आकर्षक घोषित किए और न ही फसल को खरीदने की व्यवस्था की। इधर दुनिया के पैमाने पर भी खेती की अच्छी पैदावार के चलते उपज के दाम सस्ते हुए और वैश्वीकरण को प्रतिबद्ध सरकार ने सस्ते आयात पर भी कोई रोक नहीं लगायी। नतीजा कृषि उपज के बाजार भाव बुरी तरह धवस्त हुए।"[49]

जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' उपन्यास में किसानों की मुख्य समस्या फसल बेचने की है। वहां के किसानों के खेत में गन्ने की खूब पैदावार होती थी। गाँव-गाँव में राज्य सरकार की तरफ से सिंचाई के साधन उपलब्ध कराये गए थे। वहां पर सुगर मिल की स्थापना की गई थी। मिल मालिक मिल को ज्यादा दिन चलाने में समर्थ नहीं हुए और मिल पूर्ण रूप से बंद हो गई। अब गाँव के किसानों ने गन्ना उगाना बंद कर दिया है- "नगद आमदनी कराने वाली इस फसल के अस्तित्व का लोप होने लगा तो स्फूर्ति और जोश में रहने वाले जकीर मियां का चेहरा निस्तेज हो गया। पहली बार महसूस हुआ कि आप अपनी मर्जी से अपनी मन-पसंद फसल भी उगा नहीं सकते। शफीक मियां तो जैसे एकदम बौरा ही गए। अब उनके पास आमदनी का कोई जरिया नहीं बचा।"[50] इसी तरह से जकीर अपना कर्ज चुकाने के लिए प्याज की खेती करता है। उसके खेतों में प्याज की पैदावार खूब हुई। दुर्भाग्यवश उस मौसम में प्याज की पैदावार सब जगह पर्याप्त मात्रा में हुई। प्याज का भाव एकदम से गिर गया। जकीर ने कुछ दिन तक अपने घर के एक कमरे में पूरे प्याज को फैला दिया, फिर उसमें से खराब हुए प्याज को फेंक देता है। इसी तरह से आधे से ज्यादा प्याज तो सड़ गई। किन्तु बाजार भाव में कोई इजाफा नहीं हुआ- "कोई आढ़तियां प्याज को पूछ नहीं रहा था। जरूरतमंद बनकर जो बेच रहे थे उन्हें गरजू समझकर माटी का मोल दिया जा रहा था। यह एक अजीब विडम्बना है कि जब चीजें किसानों के हाथ में होती हैं तो उसका दाम नगण्य होता है और जब हाथ से निकल जाती है तो दाम आसमान छूने लगता है।"[51]

संजीव के 'फांस' उपन्यास की आशा जिस पर कर्ज का बोझ बढ़ता ही जा रहा है। कभी पानी की अधिकता से फसल खराब हो जाती है तो कभी पानी की कमी से खेत सूख जाते हैं। कर्ज का बोझ दो लाख तक पहुंच गया। इस साल भी डेढ़ क्विंटल कपास और आधा क्विंटल सोयाबीन की उपज हुई है। आशा अपने पति को सोयाबीन और कपास बेचने के लिए मंडी भेजती है। सोयाबीन का मूल्य सरकार ने घोषित नहीं किया हैं। किसान दो-तीन दिन से मंडी में बैठे हैं, किन्तु कब तक बैठे रहें ? ऐसी स्थिति में बाजार के बनिए को किसान अपनी फसल बेंचने पर मजबूर हो जाते हैं। सुरेश एक हफ्ते से मंडी में कपास बेचने के लिए बैठा रहा | भयंकर ठंड के मौसम में वह मंडी में बैठा है। वह वहां बैठे किसानों से कहता है "मैं तो यार घर से ओढ़ने के लिए भी नहीं लाया कुछ। रात कुकड़ाता रहा ठंड से। बारह के बाद ठंड सही नहीं जाती। धोती खोलकर ओढ़ी मगर कहाँ.... ऐसा ही रहा तो मैं तो बनियों को बेचकर चला जाऊंगा। जब देश का हर फैसला देसी-विदेसी बनियों को ही करना है तो सरकार क्यों हमें चूतिया बना रही है।"[52]

बेचारे किसान गर्मी-ठंडी सहकर मंडियों में इंतज़ार कर रहे हैं कुछ किसान अपनी फसल बनियों को बेचकर वापस जाने को मजबूर हो जाते हैं, तो कुछ मंडी भाव में बेचने के लिए बैठे रहते हैं कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपनी फसल वापस लेकर चले जाते हैं। आशा का पति सुरेश अपनी फसल को सस्ते मूल्य पर नहीं बेचता बल्कि उसे लेकर वापस चला आता है। रात में हुई बारिश में कपास के साथ आशा के सपने भी बह जाते हैं- "अरे बाप ! पानी बरसने लगा। एक साथ इतने जोर से मुलगियों को नहीं जगाया। खुद ही उठा-उठाकर रखने लगी अंदर। न सामान बचा पायी, न खुद को। फिसलकर गिर पड़ी। चुब्ब-चुब्ब पानी पीता रहा कापूस। चुब्ब-चुब्ब पानी में डूबता रहा मन। अवसाद और हताशा की एक फीकी-फीकी सी तासीर गाढ़ी होती गई..... अधपेट या भूखी रहकर खून पसीने से एक इंच कर जोड़े खेत ! सोचा था, भगवान एक बार भी सुन लेगा तो ठीक-ठाक घरों में पार-घाट लग जायेंगी मुलगियाँ। लेकिन यह शेती मेरे जी का जंजाल हो गई और यह जिन्दगी भी।"[53]

प्रधानमंत्री योजना के तहत किसानों को एक जर्सी गाय देने का नियम आया। किसी भी किसान ने आज तक इस तरह की गाय नहीं देखी थी। शुरूआत में किसानों को यह जानकारी दी गयी कि बीस हजार की गाय किसानों को सिर्फ पाँच हजार रुपये में मिलेगी। किसानों ने किसी तरह से पाँच हजार रूपये का इंतजाम करके गाय खरीद ली। जर्सी गाय को किस तरह से पाला जाता है यह तक किसानों को नहीं पता था। और गाय का दूध पतला होने के कारण वह कहीं बिक नहीं सका। सरकार की तरफ से न तो किसी डेयरी का इंतजाम किया गया और न कोई दूध विक्रेता उस दूध को खरीदता है- "दूध लेकर तुकाराम कहाँ-कहाँ नहीं भटका ! रेट काफी कम। लेकिन दूध का कोई खरीदकर नहीं। या शायद ये नए दुग्ध विक्रेता थे। जिन्हें बाजार के तौर-तरीके नहीं मालूम। कमोबेश यही हाल बाकी मनमोहनी गायों का था।.... गाय न हुई, जी का जंजाल हो गयी। इतने दूध का क्या करें ? कोई लेता-वेता तो है नहीं खपाये कहाँ। फिर खिलाये कैसे, पैसा तो निकलता नहीं।"[54]

दूध की बिक्री न होने से किसानों के समक्ष गाय के चारे का बंदोबस्त करने की कठिनाई होने लगी। जिस गाय से किसान अपनी आमदनी बढ़ाना चाहते थे। आज वही उनकी समस्याओं का कारण बन गयी। जिस सूखी धरती से किसान अपने लिए अन्न नहीं उपजा पा रहा है, वहां से वह गाय के चारे का इंतजाम कैसे कर पाएगा। किसानों की सारी योजनाएं धरी की धरी रह गयी। 'फांस' उपन्यास में संजीव ने किसान योजनाओं के दुष्प्रभाव के बारे में इस प्रकार बताया है- "योजनाकारों ने सोचा था कि दूध का धंधा रोज पैसा लाएगा। सैद्धांतिकी के इस पक्ष पर उन्होंने कभी गौर ही नहीं किया कि विदर्भ की सूखी धरती पर मवेशियों को खिलायेंगे क्या और दूध बेचेंगे कहाँ।"[55] सरकार की तरफ से चलायी गयी इस योजना से किसानों की गरीबी दूर होने के बजाय और बढ़ गई। निर्धन किसानों की गाय सेठों ने खरीद ली क्योंकि किसान गाय पालने में असमर्थ थे। इस प्रकार इस योजना का लाभ भी धनवान लोगों को ही मिला।

सरकार द्वारा किसानों के लिए चलाई गई योजनाएं सिर्फ प्रचार-प्रसार में ही दिखाई देती हैं। व्यावहारिक रूप से उन योजनाओं का लाभ गरीबों को मिलता ही नहीं। विकास की आंधी में जिस तरह

से शहरों का विकास होता जा रहा है, वहीं दूसरी ओर गाँव के लोग अभी भी गरीबी में ही जीवनयापन कर रहे हैं। सरकार द्वारा प्रदान की गई योजनाओं तक पहुंचने में ही किसान की उर्जा नष्ट हो जाती है, उसका लाभ उठाना तो दूर की बात है। मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में सरकारी योजनाओं के बारे में इस प्रकार बताया गया है- "यदुनाथ भाई, यह तो हम सभी देख रहे हैं कि हम किसानों के लिए पैक्स से लेकर विभिन्न क्रय केंद्र तथा खाद-बीज और डीजल के लिए अनुदान के साथ कृषि विभाग के माध्यम से कृषि संयंत्रों एवं अन्य लाभों के लिए हमें नाकों चने चबाने पड़ते हैं। सरकारी अनुदान तक पहुँचते-पहुँचते हमें पता चलता है कि सरकार द्वारा मिलने वाली सब्सिडी दौड़धूप करने और नजराना दिए जाने में ही समाप्त हो गई।"[56] सरकार ने फसल बेचने के लिए मंडी की सुविधा तो किसानों को उपलब्ध करा दी। लेकिन किसान को मंडी तक अनाज लेकर जाने में ही अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। किसी तरह से वहां तक पहुंच गए तो मंडी में अनाज की गुणवत्ता देखी जाती है। जरा-सा सीलन भरा अनाज हो या धूल मिट्टी से युक्त हो ऐसे अनाज की बिक्री मंडी में नहीं हो सकती। इससे किसान को अपना अनाज आढ़तियों के पास बेचना पड़ता है। एम.एम.चंद्रा के उपन्यास 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में फसल बेचने की समस्या को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है- "सरकार द्वारा घोषित मूल्य के बाद भी नंगला गाँव के किसान निजी आढ़तियों को अपनी फसल बेचने को मजबूर हो गए। क्योंकि सरकारी मंडी में कभी फसल के रंग, साइज और कभी अगैती-पिछैती का बहाना लेकर नंगला गाँव के किसानों की फसल नहीं बिक सकी और इस वजह से उनकी कमर टूट गयी।"[57]

सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास का यूनुस तो सरकारी नीतियों के चलते ही एक दिन मृत्यु को प्राप्त कर लेता है। वह जितना अपने कर्ज को चुकाने के लिए खेती के नए-नए तरीके एवं व्यवसाय अपनाता है। वैसे-वैसे उस पर कर्ज का बोझ बढ़ता चला जाता है। उसने सरकार की नई योजना के तहत मुर्गी पालन करना प्रारंभ किया। मुर्गी पालन विभाग के कर्मचारी युनुस के यहां पहले मुर्गी का चारा न पहुंचाकर मुर्गियों को छोड़ जाते हैं। युनुस के परिवार को मुर्गी पालन की कोई जानकारी नहीं थी, उसने तो

अपना कर्ज चुकाने की लालच में पत्नी के झुमके बेचकर पाँच सौ रूपये में मुर्गी खरीदी। यूनुस के पास न उनको खिलाने के लिए चारा है न रखने का स्थान। उसने उन्हें लकड़ी के पिंजरे में रख दिया और रात भर में सारे चूजे मर गए- "यूनुस सुनाने लगता, "भैया, मैंने पेलां कदी मुर्गी पाली नी थी। म्हारे ज्ञान भी नी थो के उनका बच्चा कैसे रखना है, उनके कई खिलानो है ? अफसर होर ने भी वा बात म्हारे नी बतई और आधी रात के चूजा दरवज्जे छोड़ के चलिया गया।"[58]

इसी तरह से युनुस ने किसी तरह उधार लेकर पंद्रह हजार में विदेशी गाय खरीदी। उसने जिस सपने को साकार करने के लिए गाय खरीदी थी वह गाय के बछड़े के जन्म के साथ ही चकनाचूर हो गए। उसे पशुपालन विभाग के कर्मचारियों ने बताया कि इसके बछड़े खेती के काम के लायक नहीं होते। अब युनुस के सामने दूध बेचने की समस्या आ गई। किंतु जर्सी गाय के दूध के खरीददार ही नहीं मिले। इससे भी बड़ी समस्या कि उस गाय को वह रखे कहाँ क्योंकि ये गर्मी भी सहन नहीं कर सकती और एक दिन जब गाय के मुंह से झाग आने लगा तो वह घबराकर डॉक्टर को ले आया। डॉक्टर ने उसे सुझाव दिया कि- "ये विदेशी गाय है मालवा-निमाड़ की गर्मी सहन नहीं कर सकती। इसके लिए कूलर लगाओ युनुस मियां, नहीं मर जाएगी।"[59] कर्ज से दबे युनुस के लिए कूलर का इंतजाम करना बहुत ही कठिन कार्य था। इसलिए उसने गाय को बेच देना ही मुनासिब समझा किंतु बहुत हाथ पैर जोड़ने के बाद पशु-पालन विभाग वाले गाय को चार हजार में खरीदने को राजी हुए। पंद्रह हजार की गाय का चार हजार में सौदा कर युनुस घर लौट आया। यह है हमारे सरकार की नीति जो किसानों की समस्याओं को हल करने की बजाय बढ़ा देती है। युनुस गरीबी से बाहर निकलने की जितनी भी कोशिश करता उतना ही गरीब बनता जा रहा है। वह जिस नई कृषि नीति का अनुसरण करता वह उसके लिए घाटे का सौदा ही साबित होता।

टी.वी. चैनलों पर किसानों के लिए अनेक विज्ञापन दिखाए जाते हैं। उन्हीं में से एक विज्ञापन सफेद मुसली की खेती का भी था। विज्ञापन में तो हर नीति के फायदे ही बताए जाते हैं, किंतु वे किसानों के लिए घाटे की नीति बन जाती है। दीना नायक सफेद मुसली की खेती करता है किंतु उसे कोई फायदा

नहीं हुआ। उसके सामने वही मंडी की समस्या आ गई, क्योंकि मंडी में मुसली को बेचा ही नहीं जा सकता- "दीना ने ढेर की तरफ इशारा करते हुए कहा," या है सफेद मुसली की खेती। अरे मैं इन साहब लोग का केहना मैं आके पछता रयो हूँ। सब केहता था के दो हजार रुपए किलो से कम नी बिकेगी। व्यापारी तुम्हारे घर के चक्कर लगाएंगे। कोई नी आयो मम्मा। दो हजार तो छोड़ो दो सौ रूपए किलो में भी कोई खरीदने के तैयार नी है।"[60]

इसी तरह से किसानों के लिए सरकार ने लोन की व्यवस्था तो कर रखी है, किंतु किसानों को बैंक से लोन लेने में इतनी समस्याओं का सामना करना पड़ता है कि वे मजबूर होकर बाहर से ही कर्ज लेना ज्यादा ठीक समझते है। लोन की व्यवस्था के बारे में संजीव ने 'फांस' उपन्यास में कहा है- "हाँ, कहा था मगर उनको..... जिनकी फसल नष्ट हुई है। सरपंच ग्रामसेवक वगैरह से सर्टिफिकेट और खसरा खतौनी तथा दूसरे कागजात लेकर जो उस दिन नहीं आये थे। इसलिए जो लेकर आये हैं, वो उधर जाकर खड़े हो जाएँ। जो नहीं ले आये, घर चले जाएँ।"[61] सरकार द्वारा चलाई गई योजनाओं का पर्याप्त लाभ किसानों को न मिलने का सबसे बड़ा कारण है कि उन्हें उन योजनाओं की पर्याप्त जानकारी देने के लिए सरकार की तरफ से प्रचार-प्रसार की व्यवस्था नहीं की जाती है।

3.4 सरकारी तंत्र और किसान

हमारे समाज में किसानों की स्थिति में गिरावट का बड़ा कारण हमारा सरकारी तंत्र है। हमारे देश में लगभग 85% किसान लघु एवं सीमांत किसान की श्रेणी में आते हैं। इनके पास पहले से ही जमीन कम होती है। जिसके कारण इन्हें अपना जीवन-यापन करने के लिए बहुत सी कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। इनके पास खेती करने के लिए पर्याप्त साधन भी नहीं होते हैं। हर काम के लिए इन्हें दूसरों के पास जाना पड़ता है। पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' उपन्यास का रामप्रसाद एक छोटा किसान है। जिसे विरासत में अपने पिता से बैंक का कर्ज और सोसायटी का सूदखोर का कर्ज मिला है। छोटे किसान के सामने जैसे

ही कोई बड़ा खर्च आता है, वह कर्ज के बोझ से दबना शुरू हो जाता है। इसी क्रम में वह यहां तक आ पहुँचता है कि उसे अपनी जमीन बेचनी पड़ती है।

पहले तो वह कर्ज यह सोचकर लेता है कि फसल होने पर चुका देगा, किंतु फसल आने पर या तो उसके सामने कोई और खर्च आ जाता है, या प्राकृतिक आपदा से उसकी फसल नष्ट हो जाती है- "भविष्य में फसल से चुका देने की उम्मीद पर कर्ज ले लिया जाता। बाद में पता चलता कि फसल आने से पहले ही कोई और दूसरा बड़ा खर्च सामने आ गया और कर्ज के स्थान पर पूंजी प्रवाह उस ओर करना पड़ा। कर्ज तो कर्ज था, कब तक देखता, अंततः वह जमीनों को हड़प कर अपना पेट भर लेता।"[62] रामप्रसाद को बिजली का बिल अदा करना है। बिजली बिल वाले ने चेतावनी दी थी कि अगर बिल जमा नहीं किया तो बिजली बिल भरने के लिए एक भी पैसा नहीं था। जब किसान के पास कोई चारा नहीं बचता तो उसकी पत्नी के जेवर काम आते हैं। कमला के पास उसके ससुर की दी हुई एक मात्र जेवर तोड़ी बची हुई है। कमला जानती है कि बिल चुकाने के लिए रामप्रसाद के पास पैसे नहीं है। वह यह भी जानती है कि रामप्रसाद तोड़ी बेचने के लिए भी तैयार नहीं होगा।

वह रामप्रसाद को समझाने की कोशिश करती हुई कहती है कि अभी तोड़ी बेचकर बिल चुका लो फसल आने पर मेरे लिए नई तोड़ी ला देना। किसान की हर उम्मीद उसकी फसल पर ही टिकी होती है। लेकिन एक बार किसान के घर से जेवर सुनार के पास चला जाए तो वह दोबारा वापस नहीं आता है- "एक बारी सुनार के पास चीज गई, तो लौटी आज तक ? फसल पे उठा लेंगा, फसल पे उठा लेंगा, के-के सारी रकम-पात रखा गई और डूब गई। आज तक एक कील भी वापस नी आई। आखिरी तोड़ी बची है अब।"[63] किसान के जीवन में कभी भी समस्याओं का अंत नहीं होता है। एक समस्या जाती है तो दूसरी उत्पन्न हो जाती है।

हमारे देश में किसानों की फसल बेचने के लिए मंडी की व्यवस्था की गई है, किंतु वहां भी दलालों की लूट मची रहती है। किसी तरह से किसान मंडी तक पहुंचता है तो वहां पर भी उसे मजबूर होकर ही

अपना अनाज बेचना पड़ता है- "मंडी में उपज को बेचना भी बड़ी समस्या है। नीलामी की प्रक्रिया से बिक्री होती है।..... व्यापारियों की आपस में सांठ-गांठ रहती है कि किस ट्राली या बैलगाड़ी को कितने में खुटाना है, कितने से ऊपर नहीं जाना है नीलामी में। बहाने हजारों है कम भाव के, दागी हो गया है दाना, धब्बा साफ़ दिख रहा है,..... असल में माल की कीमत अगर सोलह सौ है, तो चौदह सौ बताए जाएँगे। किसान बेंचना चाहे तो ठीक, नहीं तो निकल भाई अपने रास्ते।"[64]

किसान सुबह होने से पहले अंधेरे में ही अपनी उपज लेकर घर से निकल पड़ते हैं। उसे पता है कि कम दाम ही सही, लेकिन यदि वह अनाज लेकर वापस जाएगा और दोबारा उसे बेचने के लिए लेकर आएगा तो उसे फिर से ट्रैक्टर का किराया देना पड़ेगा। और न बेचे तो सबसे बड़ी समस्या है वह घर जाकर कर्जदारों को क्या देगा इसलिए न चाहते हुए भी वह अपनी फसल को औने पौने दाम में बेंचने को मजबूर हैं। किसान के पास फसल संग्रह करने की कोई व्यवस्था न होने के कारण किसान और भी मजबूर हो जाते हैं और वे सस्ते मूल्य पर ही अपनी फसल बेच देते हैं। राम किशोर मेहता ने 'भारत में किसानों की दुर्दशा' पुस्तक में लिखा है- "पूंजीवाद पर आधारित बाजार व्यवस्था, किसानों के खिलाफ और बाजार के पक्ष में षड़यंत्र रचती सरकारें, किसानों की सबसे बड़ी दुश्मन हैं। यह एक विडंबना है कि जब किसान की फसलें अच्छी होती हैं तब किसान को आत्महत्याएं करनी पड़ती हैं। क्योंकि बाजार मांग और पूर्ति के तथाकथित सिद्धांत पर काम करता है। किसान के पास कभी इतना पैसा नहीं होता कि वह अपने उत्पादन का संग्रह कर सके और उस समय बेचे जब बाजार में उसकी उपलब्धता कम हो। देश की फसलें अधिकतर एक ही समय पर पक कर आती हैं तब बाजार उस माल से भरे होते हैं और किसान की फसल औने पौने भाव बिकती हैं।"[65]

किसान तो हर समय समस्याओं से ही जूझता रहता है। उनके सामने सबसे बड़ी समस्या सरकारी योजनाओं से जूझने की है। सरकार नीतियाँ बनाती हैं। किसान उसे अपनाना चाहता है किंतु उसे निराशा ही हाथ लगती है। सरकार ने किसानों को कृषि करने के लिए कर्ज देने की व्यवस्था बना रखी है। इसमें 'किसान

क्रेडिट कार्ड' एक महत्वपूर्ण योजना है। सरकार ने बैंकों एवं अन्य सरकारी संस्थाओं से भी किसानों को खेती करने के लिए ऋण देने की व्यवस्था बना रखी है। लेकिन हमारे देश में ऋण लेने के लिए भी ऐसी शर्तें बना दी जाती हैं जो किसानों को इस हालत में पहुंचा देती है कि उसे कर्ज लेकर खेती करने की जरूरत पड़ती है। दूसरी बात उसे बैंक से समय पर कर्ज भी नहीं मिल पाता है और उन्हें बाहर महाजन और साहूकार से कर्ज लेना पड़ता है। जो उन पर कर्ज वसूली के लिए तरह-तरह के अत्याचार करते हैं। अर्जुन प्रसाद सिंह ने इस संदर्भ में कहा है- "किसानों का अच्छा खासा हिस्सा ऐसा है जिनको बैंकों और सहकारी संस्थानों से कर्ज नहीं दिया जाता है। उन्हें अपनी खेती की बढ़ी हुई लागत को जुटाने के लिए साहूकारों और कमीशन एजेंटों से काफी ऊंची दरों (40 से 120 फीसद सालाना) पर कर्ज लेना पड़ता है। समय पर मूल और सूद नहीं चुकाने पर ये साहूकार और कमीशन एजेंट किसानों पर तरह-तरह के जुल्म ढाते हैं और उनके खेतों और अन्य संपत्तियों पर कब्ज़ा कर लेते हैं।"[66]

सरकार द्वारा किसानों को खेती करने के लिए 'किसान क्रेडिट कार्ड' योजना चलाई गई। इसके तहत किसानों को साल भर में दो बार ऋण दिया जाता है। रामप्रसाद तो आज तक महाजनों से ही कर्ज लेता आया है। फिर भी बैंक से उसके नाम नोटिस आया है कि उसने 'किसान क्रेडिट कार्ड योजना' के तहत जो ऋण लिया है उसे अदा कर दे नहीं तो उसकी जमीन कुर्की कर दी जाएगी। रामप्रसाद आवाक रह गया कि उसने कर्ज लिया कब। वह अपने जमीन के कागजात लेकर तहसील जाता है, उसे वहां कोई नहीं मिलता है। बैंक में पहुँच कर पता चलता है कि उसी के नाम पर किसी ने कर्ज लिया है, किंतु चुकाना तो रामप्रसाद को ही पड़ेगा। किसान क्रेडिट कार्ड योजना की सच्चाई को पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में इस प्रकार व्यक्त किया है- "किसान क्रेडिट कार्ड सबसे आसान तरीका है बैंक से महीने के लिए नामिनल ब्याज पर पैसा लेने का। बिचौलिए और हमारे ही बैंक के लोग मिलकर सारा खेल करते हैं। छ: महीने बाद पूरा पैसा जमा कर देते हैं और फिर उसी खाते में एक बार फिर से लोन ले लेते हैं। पैसा

जमा हो जाता है, तो किसी को कोई परेशानी नहीं होती। किसान तक को पता नहीं चलता कि उसके नाम से कोई किसान क्रेडिट कार्ड बना है।"[67]

दलाल का सीधा संपर्क बैंक मैनेजर से होता है। वे फर्जी किसानों को और फर्जी कागज़ ले आते थे। बैंक के मैनेजर से मिलकर योजना के तहत् मिलने वाली राशि को लेकर बाज़ार में ब्याज पर चलाते हैं। इस बार ब्याज के पैसे डूब गए। बैंक उन किसानों के नाम नोटिस जारी कर देता है जिसके नाम पर पैसे निकाले गए। सरकारी तंत्र के भ्रष्टाचार का खामियाजा रामप्रसाद जैसे किसानों को भुगतना पड़ता है। किस तरह से किसान सरकारी तंत्र के जाल में फंसकर अपना जीवन गवां देता है। रमेश उपाध्याय ने 'किसान आत्महत्याओं पर दो उपन्यास' में लिखा है- "किसान जीवन का चित्रण करते समय पंकज सुबीर की भाषा करुणामयी हो जाती है और सहानुभूति उत्पन्न करती है, जबकि सरकारी तंत्र का वर्णन करते समय व्यंग्यमयी होकर व्यवस्था के प्रति नफरत और बगावत की भावना जगाती है।"[68]

किसान किस तरह से सरकारी योजनाओं में फंसते जा रहे हैं, इसका पता हमें सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में युनुस की हालत देखकर पता चलता है। युनुस दिन-रात अपने परिवार के साथ मिलकर खेत में कुंआ खोदता है। एक दिन उसे पता चलता है कि पंचायत से 'कूप निर्माण योजना' के तहत उसके नाम एक लाख का लोन है। जिस कुंए के नाम का उसके नाम पर लोन है असल में वह कुंआ नहीं एक गहरा शहरा गड्ढा है। जो उसने और उसके परिवार ने मिलकर खोदा है। वह सरपंच के पास शिकायत लेकर जाता है। सरपंच की बातों से युनुस हक्का बक्का रह गया। किस तरह से कलेक्टर से लेकर मंत्री तक सिर्फ किसानों को लूटने में ही लगे हैं- "हाँ, मैंने तमारा सबका अंगूठा लगा के पैसा हेडिया। तमारे जहाँ जानो है जाओ। कलेक्टर पास जाओ, मुखमंतरी पास जाओ और हो सके तो प्रधानमंत्री पास भी चलिया जाओ। पर एक बात सुन लो। मैं एकलो पैसा थोड़ी खाऊँ हूँ। बैंक से लगाके तो जनपद का बाबू, इंजीनियर, सीओ, कलेक्टर सबके पैसा दूँ हूँ। कौन से शिकायत करोगा। पैसा कौन नी खाय।"[69]

सरकार ने फसल नष्ट होने पर किसानों के लिए फसल बीमा योजना की नीति लागू की है। इस योजना के अंतर्गत आंधी, तूफ़ान, बाढ़ या ओले से फसल के नष्ट होने पर उनको राहत राशि दिए जाने का प्रावधान है।'फसल बीमा योजना' का नाम बदलकर प्रधानमंत्री मोदी ने 'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना' कर दिया है। इस योजना के अंतर्गत कुछ ही फसलों को शामिल किया गया जिनके नष्ट होने पर किसानों को राहत राशि प्रदान की जाएगी। कुछ कर्जदार किसानों के न चाहते हुए भी उनके खाते से बीमा की किश्त कटती रही किंतु फसल के नष्ट होने पर उन्हें कोई मुवावजा नहीं दिया गया। अमरपाल ने 'किसान' पत्रिका के अपने लेख में लिखा है कि- "सरकार ने इस योजना के तहत किसानों की इजाजत के बिना ही हर उस किसान की फसल का बीमा कर दिया जिसने बैंकों से कर्ज लिया है।..... भले ही फसल बीमे के दायरे में आती हो या नहीं।.... बिना इजाजत बीमा करने के बावजूद फसल के पूरी तरह बर्बाद होने पर और समय रहते बीमा का दावा करने पर भी फसल बीमा का पैसा किसानों को नहीं मिल रहा है। बीमे के पैसे लेने के लिए किसानों को दर-दर की ठोकरें खानी पड़ रही हैं।"[70] किसानों को इस नीति का लाभ नहीं मिल पाता। किसान यदि फसल बीमा करवाना भी चाहते हैं तो उन्हें ऑफिस से ऑफिस चक्कर लगाना पड़ता है और उनके पास जो रकम रहती है, वह सब ऑफिस में बैठे पदाधिकारियों को देने में ही समाप्त हो जाती है। इसलिए चाहकर भी किसान इन योजनाओं का लाभ नहीं प्राप्त कर पाता है। मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में- "बलेसर फिछले दो-तीन बर्षों से फसल बीमा की चर्चा सुनते आ रहे थे। लेकिन उस योजना से अपने गाँव के किसी किसान को उन्होंने लाभान्वित होते नहीं पाया था। उनके गाँव के कपिलदेव और शिवधन ने सरकारी कर्मचारियों के कहने पर फसल बीमा करवायी थी। बीमा की किश्तें भी उन्होंने जमा की थीं। लेकिन बाढ़ से फसलों की बर्बादी पर बीमा राशि पाने के लिए जब उन्होंने प्रयास किया तो इस ऑफिस से उस ऑफिस तक दौड़ने और बाबुओं को नजराना देने में ही रकम समाप्त हो गयी।"[71]

राजू शर्मा के उपन्यास 'हलफनामे' का मकईराम तो पिता के आत्महत्या करने के पश्चात सिर्फ हलफनामे ही दर्ज करता रहा। उसके लाख कोशिशों के बावजूद उसे मुवावजा मिलने का कोई आसार नहीं नजर आ रहा है- "अब इन्हें दसवां और ग्यारहवां हलफनामा चाहिए ..... एक, दो, तीन.... आठ, नौ से इनका पेट नहीं भरा, इन्हें और खुराक चाहिए, राक्षस की तरह रोज एक आदमी का मांस.... इतनी शपथ और सत्यनिष्ठा, इतना सर्वोत्तम ज्ञान ये एक के बाद एक डकार जाते हैं, इनकी भूख नहीं मिटती, इन्हें अपच नहीं होता, न पाप लगता है। शपथ की आड़ में इन्हें धन चाहिए.... हलफनामे के लिफाफे में इनका पैगाम होता है.. दक्षिणा दो, नहीं तो गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी।"[72] मकई के शब्दों से साफ़ झलकता है कि वह कितना बेबस है।

हमारे देश के किसानों की यही वास्तविक स्थिति है। कोई भी मंत्री कोई भी नेता जब चुनाव आता है तो किसानों के लिए अच्छे-अच्छे वादे करता है। चुनाव बीतने के पश्चात उन्हें किसानों का ख्याल नहीं आता है। मकई दफ्तर के चक्कर काटता रहा किंतु उसे मुआवजा मिलने की कोई उम्मीद नहीं नजर आई, किंतु चुनाव आते है मंत्री ने उसे रैली में ससम्मान बुलाकर मुवावजे का चेक सौंप दिया। जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' उपन्यास में सल्तनत और भैरव मिलकर गाँव में जागरूकता अभियान चला रहे हैं। किंतु वहां के मंत्री टेकमल को अपने वोट की चिंता है। इस कारण वो सल्तनत पर हमले भी करवाता है। जब उसे लगता है कि उसके प्रयास असफल हो रहे हैं तो वह उनकी पूरी फसल नष्ट करवा देता है।

शिवमूर्ति के 'आखिरी छलांग' उपन्यास का पहलवान जिसके सामने बेटी की शादी की समस्या खड़ी है। वह सोचते हैं कि आज जिस परिवार में बाहर की आमदनी नहीं है उसका गुजारा होना मुश्किल है। खेती-किसानी से परिवार का खर्च चलना मुश्किल है। ऐसे में बेटी की पढ़ाई, बेटी की शादी के लिए वे पैसे कहाँ से लायें। खेती में खर्च हर साल बढ़ता ही जा रहा है, किंतु आमदनी उतनी ही है। ऊपर से बेची गई फसल के पैसे भी समय से नहीं मिलते। किसान क्या करे- "सोचा था इस साल वरुणा सरसों

बोयेंगे। कहते हैं बड़ी अच्छी पैदावार होती है, लेकिन मौके से हाथ में पैसा न आ पाने के चलते नहीं बो सके। आलू का बीज खरीदने के लिए पैसा जुटाना पहाड़ हो गया। दस रुपये किलो का बीज खरीद कर बोये हैं। डर है कि तैयार होने तक आलू का रेट गिर कर दो रुपये किलो से भी नीचे न चला जाए। आसाढ़ बीतते-बीतते जैसे ही किसान के घर से निकल कर बाजार में पहुंची फिर दस रुपये किलो बिकने लगती है। सारे हालात तो मर जाने के है। जिन्दा कैसे रहा जाए।"[73]

एस.आर. हरनोट के 'हिडिम्ब' उपन्यास में आज के समाज में किसानों पर राजनेताओं के बढ़ते हुए अत्याचार को दिखाया गया है। मंत्री को शावणू की जमीन पसंद आ जाती है। वह चाहता है कि किसी तरह से शावणू का बुलावा आ जाता है। मंत्री शावणू को जमीन की कीमत बताने के लिए कहता है। एक किसान के लिए उसकी भूमि ही उसकी जीविका का साधन है तो भला वह उसे कैसे बेच सकता है। वह मंत्री से कहता है- "माई बाप ! यह जमीन तो मेरे पुरुखों की है। आज हमारी दोख-सांझ है। रोजी-रोटी है सरकार। मेरी माँ है। मैं अपनी माए को कैसे बेच सकता हूँ। मेरे को नी बेचणी है।"[74] शावणू के जमीन देने से मना करने पर मंत्री का शावणू पर अत्याचार शुरू हो जाता है। उसके परिवार के सामने ही वह उसके अनाज को रौंद डालता है। अभी तक जो शावणू सामान्य रूप से जीवनयापन कर रहा था, उसका जीना मंत्री ने दुश्वार कर दिया। उसे एक ही चिंता खाए जा रही थी कि अब वह किस तरह से गुजर-बसर करेगा। खेती के अलावा उसके पास जीविका का कोई साधन नहीं था। उसके बेटे से स्कूल के शिक्षक जबरदस्ती भांग तुड़वाने का काम करते थे। मंत्री की लाख कोशिशों के बावजूद जब शावणू अपनी जमीन देने को राजी नहीं होता है तो मंत्री ने उसके पुत्र की हत्या करवा दी। कुछ समय बाद उसकी पत्नी की भी मृत्यु हो जाती है। मंत्री के अत्याचार से एक ऐसा समय आया जब शावणू का पूरा परिवार ही समाप्त हो गया। जिस जमीन को बचाने के लिए शावणू संघर्ष करता रहा। उसी जमीन को भोगने के लिए उसके परिवार में कोई नहीं बचा। अंत में शावणू अपनी जमीन को अस्पताल बनाने के लिए दान कर देता है।

3.5 प्राकृतिक आपदा और किसान

किसानों के सामने प्राकृतिक आपदा एक ऐसी समस्या है, जिससे किसान कभी बच नहीं पाता। बेमौसम बरसात और ओलावृष्टि से किसान संकट में आ जाता है। उसे कभी तो कभी बाढ़, कभी आंधी आदि समस्याओं से गुजरना पड़ता है। कभी फसल की बुआई के समय उसके सामने पानी की समस्या आती है तो कभी फसल पकने पर अत्यधिक बारिश से उसकी फसलें खराब हो जाती हैं। प्राकृतिक आपदा ऐसी समस्या है जिससे किसान क्या समाज का कोई भी वर्ग नहीं बच सकता है। अर्जुन प्रसाद सिंह ने 'कृषि संकट बनाम किसान मुक्ति' लेख में लिखा है- "भारतीय खेती आज भी काफी हद तक मानसून पर निर्भर है (2016-17 के आंकड़े के अनुसार 55 फीसद) और हर साल बाढ़, सूखे और कीड़ाखोरी जैसी प्राकृतिक विपदाओं से भारी पैमाने पर किसानों की फसलों और अन्य संपत्तियों का नुकसान होता है।"[75]

शिवमूर्ति के 'आखिरी छलांग' उपन्यास में किसानों के सामने सूखे की स्थिति उत्पन्न हो गई है। धान पकने पर है और फसल को पानी की आवश्यकता है। बारिश का कहीं कोई आसार नहीं नजर आ रहा है। किसानों की फसल सूख रही है- "लगता था, इस साल कहीं धान रहने की जगह नहीं बचेगी, लेकिन उत्तरा नक्षत्र ने ऐसा धोखा दे दिया। झकझोर पुरखा बहने लगी। नीले आसमान में सफेद बगुलों की तरह बादलों के टुकड़े दिखते और गायब हो जाते। भीषण सूखे के सारे लक्षण प्रकट हो गए। राजधानी तक हल्ला मच गया। एक चौथाई फसल सूख गयी तो करीब दस दिन बाद नहर में पानी आया।"[76]

भीमसेन त्यागी के 'जमीन' उपन्यास में रतनू और चम्पा के लाख कोशिशों के बावजूद उनके दुखों का अंत ही नहीं होता। फसल को पानी की सख्त जरूरत है किंतु बारिश का कहीं नामोनिशान तक नहीं है। चम्पा के खेतों में धान और मक्के की फसल पानी के अभाव में सूख रहे हैं। चम्पा भगवान को कोसती है कि उसके तीन खेतों में से किसी में भी पानी नहीं लगता। बारिश के पानी से ही खेती की जा सकती है

किंतु वर्षा की कोई उम्मीद नहीं नजर आ रही है। पानी की कमी से किसानों के खेत इस कदर सूख जाते हैं कि उन्हें अगले फसल की बुवाई के आसार भी नहीं नजर आ रहे हैं।

किसान किसी तरह से खुद का पेट भर भी लें तो वह पशुओं को क्या खिलाएंगे। चम्पा को अपनी फसल से बहुत उम्मीद थी। उसने सोचा था- "फसल लग गयी तो मक्का, उड़द और धान से घर भर जाएगा। उससे घर का खर्च चला लेंगे और बणिये का ब्याज-बट्टा भी चला जाएगा। लेकिन सूखे ने प्राण सोख लिए ! खेतों में इतना भी पैदा नहीं हुआ कि महीने भर घर में बैठकर खा सकें ! क्या करें, कुदरत की मार।"[77] फसल चौपट होने से रतनू के घर की स्थिति और भी खराब हो गयी। वे पैसे-पैसे को मोहताज होने लगे।

राजू शर्मा के 'हलफनामे' उपन्यास में तो सूखे की समस्या ने किसानों को इस तरह से तोड़ दिया है कि वहां के किसान आत्महत्या करने लगे। गाँव को सरकार ने डार्क एरिया घोषित कर दिया। किसान पानी की कमी को दूर करने के लिए बोरिंग तो करवाते हैं किंतु पानी नहीं आता। किसान कर्ज में डूबने लगे-"जमीन के नीचे पानी का स्तर लगातार गिरता जा रहा था। लाला की अगुवाई में ताबड़तोड़ बोरिंग डाले गए। एक-चौथाई में पानी मिला, उसे भी खींचने में जबरदस्त मशीन चलानी पड़ती थी। बाकी में कतरा नहीं था पानी का।"[78]

राकेश कुमार के 'कंदील' उपन्यास का रणसिंह अपने खेतों में मक्के की बुवाई कर रहा है। उसकी बस एक ही इच्छा है कि किसी तरह से बारिश हो जाए और वह धान की रोपाई कर दे। इन्तजार करने के बाद बारिश होती है। बारिश भी इस तरह कि इलाके के सब किसान तबाह हो गए। उनके खेतों की मिट्टी तक पानी में बह गई। बारिश बंद होने पर वे पुनः अपने खेतों में धान की रोपाई करने लगे। बारिश एक बार बंद हुई तो पुनः किसानों के खेत सूखने लगे-"उस प्रलय के बाद अगले इन छः महीनों में धरती पर ऐसा सूखा पड़ा कि धान की आने वाले फसल की पूरी आस ही ख़त्म हो गई। उनके मुहों को चिढ़ाने के लिए खेतों में चौड़ी दरारें बन आईं।"[79] पहले बाढ़ और फिर बाद में सूखा चारों तरफ अन्न का अकाल

पड़ गया। लोग भूख से बेहाल हैं, और कर्ज में डूब गए। बैंक वाले किसानों के घर-घर जाकर नोटिस दे रहे हैं।

जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँव वालों' उपन्यास में जकीर कर्ज लेकर खेत में बोरिंग करवाता है। गन्ने और धान की फसल तबाह होने के बाद वह वह गेहूं की खेती खूब मन लगाकर करता है। उसे पूरी उम्मीद थी कि गन्ने और धान की कसर गेहूं से पूरी हो जायेगी। गेहूं कटकर खलिहान में रखे जा रहे थे। फाल्गुन के महीने में इतनी जोरदार तरह से बारिश हुई कि गेहूं की चौथाई फसल में अंकुर निकल गए। यह प्रकृति की मार ही है जो किसान की थाली में परोसा हुआ अन्न छीन लेती है- "ये आंधी तूफ़ान और बारिश कहां से और क्यों आते हैं ?..... और इन्हें आना ही है तो जब इनकी जरूरत होती है तो क्यों नहीं आते।"[80]

संजीव के 'फांस' उपन्यास में कपास की फसल तैयार होने के समय ऐसी बारिश होती है कि किसानों की फसल नष्ट हो गई। किसी तरह से फिर से ब्याज पर और बैंक से लोन लेकर किसानों ने खेतों की बुवाई की। पुनः बारिश होने से किसानों की दूसरी बार की मेहनत भी खराब हो गई। अब तीसरी बार उन्हें पुनःबीज बोने का इंतजाम करना पड़ा। बीज बोते समय छोटी बीजों को धमका रही है- "दो-दो बार धोखा हो चुका है। इस बार बहना नहीं, बिलाना नहीं, सड़ना नहीं, सुखना नहीं, दगा मत देना। बरोबर जम सिल। समझाता ? बहोत मारूंगी, हाँ ! ।"[81]

हमारे देश का किसान तो प्रकृति पर ही निर्भर है। कभी बाढ़, कभी सूखा, कभी ओला तो कभी फसल कटने पर बारिश से फसलों का नुकसान, किसान हमेशा किसी न किसी समस्या में घिरा रहता है। मानो समस्याएं ही किसान की नियति है। अपने सामने अपनी फसलों को नष्ट होता देख किसान की मनःस्थिति कैसे हो जाती है, इसका अंदाजा सूर्यनाथ सिंह के 'चलती चाक' उपन्यास में मंगतराम के इस कथन से लगाया जा सकता है- "आप लोग तो अन्तर्जामी पुरुष हैं महाराज, ज्यादा अच्छी तरह जानते होंगे। हम क्या कहें, लेकिन सालभर मेहनत करके, खाद-पानी दे के, सांड भंईसा-लिलगाय, चिड़िया-

चुडुंग से बचा के फसल तैयार करते हैं, काटने की बारी आती है तो इस तरह उसको चौपट होते नहीं देखा जाता। देव की मरजी मान के करेजा पर पत्थर रख लेते हैं। मंगतराम का गला भर आया था।"[82] वैश्वीकरण की आंधी में जिस तरह शहरों की तरफ लोगों का झुकाव अधिक बढ़ रहा है। गाँव उसी रफ्तार से और भी पीछे जा रहे हैं। गाँव में बसे दीन-हीन किसान और भी समस्याओं में घिरते जा रहे हैं। खेती-किसानी से जुड़े लोग के पास पर्याप्त सुविधाएं न होने से वे बेबसी और जहालत का जीवन जी रहे हैं। भारत में कृषि से जुड़े किसानों में लघु एवं सीमांत किसान संख्या में सबसे अधिक हैं। ये लोग खेती के लिए पूरी तरह प्रकृति पर निर्भर होते हैं। मानसून ने साथ दिया तो ठीक-ठाक पैदावार हो जाती है। नहीं तो सब कुछ बर्बाद। इसलिए इन पर कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा है। 'बदहाल किसान और लोकतंत्र की नींद' लेख में विजय गुप्त ने लिखा है- "प्राकृतिक कोप तो किसानों को मारते ही हैं, रही-सही कसर ये कसाई महाजन पूरी कर देते हैं। धनी-मानी और तकनीकी सुविधाओं से लैस बड़े किसानों को छोड़ दें तो बाकी किसान पूर्ण रूप से मानसून पर निर्भर होते हैं। पानी बरसा तो ठीक नहीं तो सत्यानाश। बिजली, पानी, कीटनाशक, बीज, खाद की कोई समुचित सुविधा गांवों में उपलब्ध नहीं है।"[83] पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में प्राकृतिक आपदा के कारण ही रामप्रसाद आत्महत्या कर लेता है। रामप्रसाद एक छोटा किसान है, जो पहले ही कर्ज में डूबा है। बैंक की धोखाधड़ी से उसे बैंक के फर्जी लोन के केस में भी फंसा दिया जाता है। गेहूं की फसल पक रही है किंतु मौसम के मिजाज को देखकर रामप्रसाद और कमला अंदर ही अंदर भयभीत है। जैसे-जैसे बादल कड़क रहे है, बिजली चमक रही है वैसे-वैसे कमला मन ही मन भगवान से प्रार्थना कर रही है। किंतु उनकी कोई सुनने वाला नहीं है। उस रात जोर की बारिश हुई, आंधी आई और ओलों से पूरी धरती सफेद हो गई। बारिश और ओलों से किसान की फसलें खराब हो गई।

रामप्रसाद उल्लास में था कि गेहूं की फसल कटने के बाद जो आमदनी होगी वह कर्ज चुका देगा, किंतु उसकी फसल के तीनों बड़े दुश्मन अपने विकराल रूप में सूखा पानी के खेतों में तांडव कर रहे हैं। "ओलों की मार खाकर वह बालियाँ टूट-टूटकर जमीन पर गिर रही है, जो कुछ घंटों पहले तक अपने गर्भ

में कुछ होने का अहसास लिए, हवाओं के स्पर्श पर झूल रही थीं, झूम रही थीं। ओले गेहूं के पौधे पर जहां जाकर टकराते है, वहीं से उसे तोड़ कर गिरा देते हैं। जो पौधे हवा के कारण जमीन पर पहले ही गिर चुके थे, अब ओलों में दबकर उनकी कब्र बन रही है। जिंदा कब्र। या शायद यह सफेद है, जो पूरे खेत पर बिछा दिया गया है। कफ़न फसल का और कब्र किसान की।"[84]

बारिश से किसानों की फसल नष्ट हो गई। गाँव के सारे किसान कलेक्ट्रेट ऑफिस में एकत्रित हो जाते हैं। किंतु कलेक्ट्रेट को किसानों से क्या लेना-देना। किसान अपनी फसल नष्ट होने का शोक मना रहे हैं, दूसरी तरफ जिले में उत्सव का आयोजन चल रहा है। किसानों को कलेक्ट्रेट ऑफिस से हटाने के लिए उनको आश्वासन दिया गया कि उनको मुआवजा मिलेगा, किंतु उनके कहने का कोई मतलब नहीं है। जिस फसल को किसानों से अपने खून पसीने से सींचा था। उसी गेहूं की बालियों को लेकर वे अपनी बेबसी प्रकट करने आये थे। हमें सरकारी तंत्र की क्रूरता स्पष्ट रूप से तो तब देखने को मिलती है जब किसानों की उसी नष्ट फसल को मंच पर सजाने के लिए दे दिया जाता है। रामप्रसाद जिसने बैंक से कोई लोन नहीं लिया था, उसे धोखे से बैंक के लोन में फंसा दिया जाता है। प्राकृतिक आपदा के तहत मिलने वाली राशि में सब किसानों के नाम तो दर्ज किये गए, किंतु रामप्रसाद का नहीं। जब उसके पास कोई रास्ता नहीं बचता है तो वह आत्महत्या कर लेता है, किंतु उसकी आत्महत्या का ज़िम्मेदार भी उसकी मानसिक स्थिति का खराब होना बताया जाता है। आज बदलते परिवेश एवं मौसम की मार से किसानों की छमताएं दिन-प्रतिदिन घट रही है। अधिकांश युवा रोजगार की तलाश में शहर की तरफ पलायन कर रहे हैं, क्योंकि उन्हें खेती करना लाभ का सौदा नहीं लगता है। किसी भी देश और समाज की ऊर्जा उसके युवाओं में समाहित होती है। जिस समाज में युवाओं की शक्ति का बेहतर इस्तेमाल होता है, वह उन्नति करता है। हमारे देश की कृषि के पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण यहाँ के युवाओं का कृषि से मोहभंग है।

आज की नई पीढ़ी ने अपने आपको कृषि कार्य से अलग कर लिया है। आज की नई पीढ़ी की कुछ आकांक्षाएं होती हैं, कुछ उम्मीदें होती हैं। वे अच्छा जीवन जीना चाहते हैं, उन्हें लगता है कि उनकी

उम्मीदें कृषि से नहीं पूरी हो सकतीं इसलिए वे कृषि से पलायन कर रहे हैं। मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं'उपन्यास का बलेसर बत्तीस बीघे का काश्तकार है, किंतु उसके तीनों बेटे कृषि कार्य में रूचि नहीं लेते है। उनको बलेसर का भी कृषि से जुड़े रहना नहीं पसंद है। वे बलेसर को समझाते हैं- "अब खेती से जुड़े रहना किसी भी दृष्टि से फायदेमंद नहीं। कृषि कार्य तो अब घाटे और कष्ट का सबब बन गया है। जैसा कि माँ बताती हैं और होश संभालने के बाद मैं स्वयं देखते आ रहा हूँ, इस खेती से उबरने की अपेक्षा हम अधिक परेशान ही होते हैं। खा-पीकर बच्चों को पढ़ाने-लिखाने भर कुछ बचा लेने में ही हमारा सारा उपार्जन सिमट जाता है।"[85] कुलराखन अपने पिता को समझा रहा है कि पिता जी कृषि कार्य में बढ़ती समस्याओं के कारण लोग अपनी जमीन जायजाद को बेचकर शहरों की तरफ पलायन कर रहे हैं। क्योंकि किसी भी बड़े खर्च को वहन करने की शक्ति किसान में नहीं होती है। वे बलेसर से कहते हैं आपको भी तो सुरभि दीदी की शादी करने के लिए अपना खेत रेहन पर रखना पड़ा था। इतने साल बीत गए लेकिन आज तक हम अपने रेहन पर रखे खेत को नहीं छुड़ा पाए।

आज हमारे देश की सरकार भी कृषि कार्य को सरल बनाने के कोई ठोस कदम नहीं उठा रही है। उनके विकास के एजेंडे में कृषि कार्य अंतिम पायदान पर होता है। हमारे यहां कृषि कार्य में कठिनाइयां घटने के बजाय दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। हमें अपने खेत बेचकर शहर में अपना निवास स्थान बना लेना चाहिए। 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में किसानों की खेती से पलायन के बारे में इस प्रकार वर्णन किया गया है- "अब खेती-किसानी से बढ़कर परेशानी का कार्य कुछ और नहीं रह गया है। खेती की बदहाली से निरंतर किसान आत्महत्याएँ करते जा रहे हैं। इस कार्य से वे त्रस्त और दुखी हैं। इसलिए अपनी खेती का कोई इंतजाम कर या उसे किसी ठिकाने लगा आप लोग अपने माँ बाप को यहाँ शहर ले आइये.....। गिरती उम्र में कृषि के लिए उनका गाँव पर रहना एकदम उचित नहीं।"[86] वे चाहते हैं कि किसी भी चाहते हैं कि किसी भी तरह से बलेसर उनकी बात समझ जाएं, और खेत बेचकर शहर की तरफ पलायन कर लें।

3.6 हिंदी उपन्यास और किसान आंदोलन

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में हमें किसान जीवन की अनेक समस्याएं देखने को मिलती हैं। आज किसान अनेक समस्याओं से घिरे होने के बावजूद अपने हक की लड़ाई स्वयं लड़ रहा है। अब वह दीन-हीन बने रखने में विश्वास नहीं रखता अपितु हर अन्याय के खिलाफ आवाज उठाता है। शिवमूर्ति के 'आखिरी छलांग' उपन्यास में तो गाँव वाले अपनी फसल को सूखे से बचाने के लिए नहर की पटरी तक काट देते हैं, किंतु उस समय गाँव वालों पर सामूहिक मुकदमा चला दिया जाता है। गाँव वाले भी इस अन्याय के खिलाफ धरना प्रदर्शन की योजना बना लेते हैं- "तय हुआ की इस ज्यादती के खिलाफ धरना प्रदर्शन करके ज्ञापन दिया गया। मांग की जाय कि जल्दी से जल्दी नहर में मौजूद सिल्ट और सफाई मरम्मत कराये फर्जी भुगतान लेने और फर्जी मुकदमा दर्ज कराने का आरोप सिद्ध हो सके। वरना फिर बीस-बाईस साल तक पूरे गाँव को बिना कुसूर फर्जी मुकदमा झेलना पड़ेगा।"[87] किसान अपनी समस्याओं से लड़ने के लिए विचार विमर्श भी करते हैं।

मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में किसान एक जगह एकत्रित होकर खाद और पानी की समस्या से निबटने के लिए योजना बना रहे हैं। बलहारी गाँव में पानी की समस्या के कारण किसानों की फ़सलें सूख रही है। दूसरी तरफ बाजार में यूरिया बेचने वाले भी किसानों के साथ छल कर रहे हैं। किसानों के लिए सरकार ने जो मूल्य तय कर रखे हैं, दुकान वाले उस मूल्य पर उन्हें नहीं देते। वे आपस में ही दूसरे दुकानों को वही यूरिया अधिक रेट पर देकर मुनाफा कमाते हैं। किसानों को यह कह देते हैं कि यूरिया खत्म हो गई हैं। किंतु किसान उनकी यह चालाकी समझते हैं। इसलिए वे इसके खिलाफ आन्दोलन की योजना बनाते हैं- "हमारे चुपचाप बैठे रहने से कुछ होने वाला नहीं। पिछले वर्ष हमारे आन्दोलन पर ही नहर का रुका हुआ पानी आया था और सरकारी रेट पर बीज वितरण की धांधली भी रुकी थी। हमें यूरिया वितरण की सरकारी दुकानों पर चलकर ताला जड़ देना है। जब निर्धारित रेट पर वह हमें मिलना ही नहीं तब उन वितरण केन्द्रों को क्यों खुले रहना। इसके बाद हमें ब्लाक ऑफिस का भी घेराव करना

है। जैसा कि हम सभी जानते हैं, हम किसानों के लिए सरकारी राहत की जो भी योजनाएं बनती हैं, उसका क्रियान्वयन ब्लाक से ही होता है, इसलिए निर्धारित दर पर यूरिया का वितरण न होने का भागीदारी ब्लाक ऑफिस ही है।"[88]

इसी तरह से गाँव के किसानों तो उनके फसल का मूल्य समय पर नहीं मिल पाता है। जिसके कारण उन्हें बीज एवं खाद खरीदने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। सरकार के नए नियम के तहत सरकारी रेट पर किसानों के धान खरीदने के लिए क्रय केंद्र बनाए गए हैं। इन क्रय केन्द्रों की स्थापना इस उद्देश्य से की गई थी कि किसानों की फसल का उन्हें उचित मूल्य प्राप्त हो सके, किंतु इन क्रय केन्द्रों का लाभ बिचौलिए एवं आढ़तिये ही प्राप्त करते हैं। क्रय केन्द्रों पर किसानों को तमाम तरह की समस्याएं झेलनी पड़ती हैं। उनकी फसलों में कई तरह की कमी बताकर वे उसे खरीदने से इन्कार कर देते हैं। तमाम तरह की समस्याओं को झेलने के पश्चात यदि वे अपने अनाज को किसी तरह से बेच पाते हैं, तो समय पर उन्हें उनका भुगतान नहीं प्राप्त हो पाता। सब किसान मिलकर अपने फसल की बकाया राशि को प्राप्त करने के लिए प्रदर्शन करने की योजना बनाते हैं। उनके गाँव की गन्ने की फसल का भुगतान अभी तक उन्हें नहीं प्राप्त हुआ है। गन्ने की मिल के बंद हो जाने से उनकी समस्या और बढ़ गई है। इसलिए गाँव के किसान गन्ने की बकाया राशि को पाने का भी प्रयास करते हैं। जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गांववालो' उपन्यास में ज़कीर के लाख प्रयत्न करने के बावजूद उसकी फसल से उसे मुनाफा नहीं प्राप्त हुआ। उस पर कर्ज का बोझ निरंतर बढ़ता जा रहा था। कभी मिल के बंद होने से गन्ने की फसल की बुआई बंद करनी पड़ती है, तो कभी फसल संरक्षण की व्यवस्था न होने से उसकी फसल सड़ जाती है, कभी प्राकृतिक आपदा के कारण उसकी फसल बर्बाद हो जाती है। अंत में वह कर्ज के बोझ से इतना दब जाता है कि आत्महत्या कर लेता है। भैरव और सल्तनत गाँव के किसानों से एवं किसान सभा से विचार विमर्श करके किसानों के हक के लिए आमरण अनशन पर बैठते हैं- "नहर का मुख्यालय, जहाँ उसका संचालन कार्यालय और मुख्य संयंत्र अवस्थित था, पर एक छोटा शामियाना लगाया गया और उसमें नहर के

जीर्णोद्वार से संबंधित मांगो के अनेक पोस्टर और बैनर टांके गए। नीचे एक दरी बिछाई गई जिस पर बैठकर सल्तनत ने आमरण अनशन शुरु कर दिया।"[89] सल्तनत किसानों के हक के लिए अनशन पर तो बैठ जाती है, किन्तु तत्कालीन सरकार के ऊपर कोई फर्क नहीं पड़ता है। उनके लिए तो वह एक साधारण सी लड़की है जिसके मरने से उन पर कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है। हमारी सरकार की किसानों के प्रति जो उपेक्षापूर्ण रवैया है, उसी से किसानों की स्थिति दिन-प्रतिदिन और बिगड़ती जा रही है। वह अपने सामने कोई विकल्प न पाकर आत्महत्या करने को मजबूर हो जाता है।

एम.एम.चंद्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में किसानों के सामने पानी की समस्या, फसल का मूल्य समय पर न मिलना, सरकारी नीतियों का कारगर न हो पाना आदि के कारण किसान त्रस्त हैं। अघोघ और उसके दोस्त मिलकर किसान सभा का गठन करते हैं। जिसमें वे किसानों की समस्याओं पर बातचीत करते हैं एवं उनका हल ढूँढने का भी प्रयास करते हैं- "हमारे गाँव के बारे में किसानों के बारे में, जब कोई नेता नहीं सोच रहा है, तब हम जैसे किसानों के बच्चों को ही आगे आना होगा। यह खेती किसानी का संकट हमारा है, इसलिए इसके समाधान के लिए भी हमें ही लड़ना पड़ेगा।"[90] उपन्यास में सविता के माध्यम से महिलाओं की आन्दोलन में भागीदारी को भी दर्शाया गया है। यदि महिलायें कृषि कार्य में हाथ बंटाती हैं तो आन्दोलन का भी हिस्सा बन सकती हैं- "किसान परिवार का छोटे से छोटा बच्चा भी खेती किसानी के काम में हाथ बंटाता है। यदि महिलायें खेती किसानी कर सकती हैं तो वे किसान आन्दोलन का भी हिस्सा बन सकती हैं। यदि आप लोग चाहें तो हम महिलायें भी आप लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़ें।"[91]

गाँव के किसान आन्दोलन में एक बार अपनी किडनी बेचने तथा दूसरी बार अपने गाँव तक को दांव पर लगा देते हैं। किंतु प्रशासन की तरफ से उन्हें कोई आश्वासन नहीं मिला न ही उनकी कोई सहायता की गयी। कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास में किसानों की ज़मीन पर कंपनी लगाने के लिए उनकी ज़मीन पर कब्ज़ा किया जा रहा है। उपन्यास में सिर्फ आदिग्राम के ही नहीं, अपितु राजस्थान

और गुड़गाँव के भूमि अधिग्रहण के विरोध में किसानों के आन्दोलन को भी दिखाया गया है। किसान एक तरफ अपनी ज़मीन को बचाने के लिए आन्दोलन करते हैं तो दूसरी तरफ अकाल के समय कर न चुकाने के लिए वे आन्दोलन करते हैं- "ज़मीन उसी की जो उस पर खेती करे। किसानों के नारे बुलंद होने लगे, "जान देंगे, धान नहीं देंगे। महेन्द्र और संघमित्रा के आह्वान पर हर घर से एक भाई, एक रूपया, एक लाठी की मांग हुई और देखते देखते किसानों की एक बड़ी फौज बन गयी। आदमी और अनाज के बीच का युगों पुराना सम्बन्ध मात्र रह गया, बीच की तमाम बाधाओं, ज़मीदार, पुलिस, दरोगा ,पटवारी, साहूकार, महाजन को एक धक्का और दो फसल तैयार होने पर दल के दल लोग एकजुट होकर खेतों में उतरे । लाल झंडा गाड़कर धान की कटाई हुई.....। ज़मीदारों को किसानों के खलिहान से अनाज निकलवाने के लिए बंदूकधारी पुलिस का सहारा लेना पड़ा।"[92]

किसान अपने कंधे पर हल रखे अपने बैलों को साथ लेकर आन्दोलन में हिस्सा ले रहे हैं। किसानों की समस्याओं के अत्तिरिक्त इक्कीसवीं सदी में कुछ ऐसे उपन्यासों की रचना भी हुई, जिनमें किसानों को जागरूक करने का प्रयास किया गया। सूर्यनाथ सिंह के 'चलती चाकी' उपन्यास में श्वेतानंद गाँव के किसानों को कृषि करने के तरीकों के बारे में बताते हैं। वे किसानों को सिंचाई करने के तौर-तरीकों के बारे में बताते हैं। आज किसानों के सामने सिंचाई की समस्या इसलिये उत्पन्न हो रही है, क्योंकि हमारे पारंपरिक स्रोत जैसे कुएं, तालाब आदि सूख गए हैं तथा उनको पाट दिया गया है। वे गाँव के बालकों और किसानों को एकत्रित कर तालाबों की फिर से खुदाई करवाते हैं। उनको बूँद सिंचाई के माध्यम से सिंचाई करने के प्रेरित करते हैं, ताकि पानी की बचत की जा सके। किस मिट्टी के लिए कौन सी फसल उपयोगी सिद्ध होगी इसके बारे में भी किसानों को बताते हैं।

इसी तरह से जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' उपन्यास में भैरव और सल्तनत गाँव के युवा जो पढ़े लिखे होने के बावजूद बेरोजगार हैं। उनके लिए खेती को ही एक रोज़गार की तरह बनाने की तरकीब खोज रहे हैं। वे गाँव की बंजर जमीन को समतल बनाकर उसमें से झाड़ काटों को साफकर उसे

कृषि योग्य बनाते हैं। जिससे यह बेरोजगार युवाओं के लिए आमदनी का एक जरिया बन सके- "सदस्यों की संख्या 45 है और जमीन का कुल रकबा तकरीबन डेढ़ सौ बीघा होगा.... मतलब एक आदमी पर लगभग चार बीघा की मेहनत। ज्यादा नहीं है.... शहर में अगर इतने ही क्षेत्रफल में कोई कारखाना खुल जाता है तो उससे हजारों आदमी की आजीविका चलने लगती। यहाँ भी हम इसे कारखाना की तरह ही चलाएंगे और साबित करेंगे कि कृषि को भी उद्योग की तरह लाभप्रद और कारगर बनाया जा सकता है।"[93] वे गाँव के युवाओं को एकत्रित कर सामूहिक रूप से खेती करवाते हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान जीवन की अनेक समस्याएं देखने को मिलती हैं। जिनमें से एक तो सरकार की कृषि नीतियां हैं, जिनसे कृषि समाज लाभान्वित होने की बजाय संघर्ष कर रहा है। आज भी किसान सिंचाई के लिए प्रकृति पर ही निर्भर हैं, सरकार की तरफ से अनेक फसलों को पानी उपलब्ध कराने का कोई ठोस कदम नहीं उठाया जा रहा है। खाद, बीज, पानी उनकी समस्याओं के केंद्र बिंदु हैं। मंडी एवं बैंक में बिचौलिये की वजह से उन्हें समस्याएं झेलनी पड़ती हैं। इन सब समस्याओं के बीच किसान संघर्ष कर रहा है।

संदर्भ

1. मजुमदार, रमेशचन्द्र एवं अन्य; भारत का बृहत् इतिहास प्राचीन भारत; S.G. Wasani for Macmillan India Limited and Printed by V.N. Rao at Macmillan India Press, Madras 600041; संस्करण : 1994; पृ. 28
2. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत(अनु.) सुशीला डोभाल; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2018; पृ. 82
3. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2011; पृ. 64
4. वही, पृ. 65
5. भट्टाचार्य, सब्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास 1850 -1947; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2015; पृ. 46
6. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2011; पृ. 64
7. पुष्पराज, नंदीग्राम डायरी; पेंगुइन रैंडम हॉउस इंडिया प्रा. लि. सातवीं मंजिल, इनफिनिटी टावर सी, डी एल एफ साइबर सिटी, गुड़गाँव- 122002, हरियाणा, भारत; संस्करण : 2009; पृ.-9
8. त्यागी, भीमसेन; जमीन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टिट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 160
9. वही, पृ. 5
10. वही, पृ. 53
11. वही, पृ. 57
12. वही, पृ. 58
13. वही, पृ. 152
14. मेहता, रामकिशोर; भारत में किसान की दुर्दशा; उद्भावना एच-55, सेक्टर-23 राजनगर, गाजियाबाद; संस्करण : 2018; पृ. 22
15. वही, पृ. 185
16. प्रकाश, अरुण; उपन्यास के रंग; अंतिका प्रकाशन, सी-561 यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2 गाजियाबाद-201005(उ.प्र.); संस्करण : 2013; पृ. 144
17. त्यागी, भीमसेन; जमीन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 192
18. मेहता, रामकिशोर; भारत में किसान की दुर्दशा; उद्भावना एच-55, सेक्टर-23 राजनगर, गाजियाबाद; संस्करण : 2018; पृ. 61
19. सिंह, सूर्यनाथ; चलती चाकी; सामयिक प्रकाशन 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2020; पृ. 47
20. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. x-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज -2 नई दिल्ली 110020; संस्करण : 2019; पृ. 134

21. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँव वालो; वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2012; पृ. 42
22. वही, पृ. 56
23. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-561 यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 30
24. वही, पृ. 57
25. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2007; पृ. 128
26. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-561 यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 10
27. वही, पृ. 65
28. वही, पृ. 70
29. वही, पृ. 84
30. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण : 2018; पृ. 150
31. त्यागी, भीमसेन; जमीन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 297
32. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ. 267, सेक्टर- 16 पंचकूला-134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 220
33. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 147
34. कुमार, आशुतोष; किसानों के साथ बर्बरता के पीछे; रविवार (सं.) राजकिशोर; कॉरपोरेट हाउस, बी –ब्लॉक, दितीय मंजिल, 169, आरएनटी मार्ग, इंदौर- 452001; जून, 2017; पृ. 8
35. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली -110002; संस्करण : 2007; पृ. 45
36. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 45
37. राकेश, राजकुमार; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ. 267, सेक्टर- 16, पंचकूला-134113(हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 180
38. जोशी, रामशरण; किसान समाज और दूसरे संघर्षशीलजन; हंस (राजेंद्र यादव); अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/3, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 103
39. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003; संस्करण : 2011; पृ. 111
40. पुष्पराज, नंदीग्राम डायरी; पेंगुइन रैंडम हॉउस इंडिया प्रा. लि., सातवीं मंजिल, इनफिनिटी टावर सी, डी. एल. एफ. साइबर सिटी, गुड़गाँव- 122002, हरियाणा, भारत; संस्करण : 2009; पृ. 7
41. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 41
42. शर्मा, देविंदर; अब खेतों में किसान नहीं दिखेंगे; हंस (राजेंद्र यादव); अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 194

43. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 201
44. वही, पृ. 201
45. वही, पृ. 201
46. (सं.) प्रो; संजय नवले; किसान-आत्महत्या; यथार्थ और विकल्प; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2018; पृ. 158
47. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि., x-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज- 2 नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 48
48. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी- 561 यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2 गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 117
49. गोयल, रवीन्द्र; लंपट विकास के दौर में खेती; समयांतर (सं.) पंकज विष्ट; 79-ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली; जुलाई, 2017; पृ. 14
50. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँव वालो; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2012; पृ. 19
51. वही, पृ. 63
52. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 141
53. वही, पृ. 144
54. वही, पृ. 68
55. वही, पृ. 69
56. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद- 211001; संस्करण : 2018; पृ. 58
57. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि., x -30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 46
58. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-561 यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2 गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 121
59. वही, पृ. 124
60. वही, पृ. 127
61. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 97
62. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन, पी.सी.लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर-466001 (म.प्र.); संस्करण : 2017; पृ. 8
63. वही, पृ. 22
64. वही, पृ. 92
65. मेहता, रामकिशोर; भारत में किसान की दुर्दशा; उद्भावना एच-55, सेक्टर-23 राजनगर, गाजियाबाद; संस्करण : 2018; पृ. 32
66. सिंह, अर्जुन प्रसाद; कृषि संकट बनाम किसान मुक्ति; फिलहाल (सं.) प्रीति सिन्हा; फिलहाल ट्रष्ट स्वास्तिक प्रेस, काजीपुर, पटना, नेहरु नंदा भवन, दरोगा राय पाठ, पटना 800001; जनवरी-फ़रवरी, 2018; पृ. 16
67. वही, पृ. 139

68. उपाध्याय, रमेश; किसान आत्महत्याओं पर दो उपन्यास; कथन (सं.) संज्ञा उपाध्याय; 107 साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली- 110063; जनवरी-मार्च, 2019; पृ. 153
69. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-561 यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 125
70. अमरपाल, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना किसके हित में ? किसानों के या निजी बीमा कंपनियों के ?; किसान (सं.); ग्राम-मांगरौली, पोस्ट-बेगमाबाद गढ़ी, वाया दोघट, जिला-बागपत, पिन-250622; अक्टूबर, 2019; पृ. 9
71. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण : 2018; पृ. 85
72. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली -110002; संस्करण : 2007; पृ. 45
73. शिवमूर्ति; आखिरी छलांग; नॉटनल प्रकाशन, 16/1454, इंद्रा नगर, लखनऊ(उ.प्र.) 226016; संस्करण : 2014; पृ. 8
74. हरनोट, एस.आर; हिडिम्ब; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134113 (हरियाणा); संस्करण : 2011; पृ. 22
75. सिंह, अर्जुन प्रसाद; कृषि संकट बनाम किसान मुक्ति; फिलहाल (सं.) प्रीति सिन्हा; फिलहाल ट्रष्ट स्वास्तिक प्रेस, काजीपुर, पटना, नेहरु नंदा भवन, दरोगा राय पाठ, पटना-800001; जनवरी-फ़रवरी, 2018; पृ. 16
76. शिवमूर्ति; आखिरी छलांग; नॉटनल प्रकाशन, 16/1454, इंद्रा नगर, लखनऊ (उ.प्र.) 226016; संस्करण : 2014; पृ. 3
77. त्यागी, भीमसेन; जमीन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 73
78. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2007; पृ. 130
79. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 169
80. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँव वालों; वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2012; पृ. 47
81. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 99
82. सिंह, सूर्यनाथ; चलती चाकी; सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2020; पृ. 38
83. गुप्त, विजय; बदहाल किसान और लोकतंत्र की नींद; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16; रोहिणी, दिल्ली- 110089; अगस्त, 2017; पृ. 7
84. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी.सी.लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर- 466001 (म.प्र.); संस्करण : 2017; पृ. 183
85. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण : 2018; पृ. 26
86. वही, पृ. 141

87. शिवमूर्ति; आखिरी छलांग; नॉटनल प्रकाशन, 16/1454, इंद्रा नगर, लखनऊ (उ.प्र.) 226016; संस्करण : 2014; पृ. 4
88. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण : 2018; पृ. 68
89. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँव वालो; वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2012; पृ. 68
90. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि., x-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 87
91. वही, पृ. 154
92. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड. नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2011; पृ. 98
93. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँव वालो; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2012; पृ. 97